क्या क्या न सहे हमने सितम (संस्मरण)

राधा गोयल

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

क्या-क्या न सहे हमने सितम (संस्मरण)

क्या-क्या न सहे हमने सितम

(संस्मरण)

राधा गोयल

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-250-0

संपादक- डॉ. प्रीति समिकत सुराना, वारासिवनी

तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी

मुख्य कार्यालय- 15 नेहरू चैक, वारासिवनी, जिला- बालाघाट (म.प्र.) 481331

मोबाईल- 9424765259,9009465259

ईमेल -**antrashabdshakti@gmail.com**

वेबसाईट -**www.antrashabdshakti**

प्रथम संस्करण- 2020, राधागोयल

मूल्य- 250.00 रूपये

मुद्रक- शैलू कम्प्युटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY RADHA GOYAL

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भूमिका

जिंदगी कदम कदम पर इम्तिहान लेती है। इसकी न तो नियत तारीख होती है और न ही कोई नियत समय। अचानक किसी मोड़ पर टकराती है। जीवन में उथल-पुथल मचा देती है। कोई जीवन की इन कठिनाइयों से घबराकर मौत चाहता है। किंतु माँगने से क्या मौत मिल जाती है? वक्त के साथ तालमेल बिठाना बहुत जरूरी है। जो नहीं सीखते, वे दुःखी रहते हैं।

माँगने से जो मौत मिल जाती तो कौन जीता फिर इस जमाने में।

कठिनाइयों से भागने से कुछ नहीं होने वाला। इनसे जूझने वाला ही कुंदन बनकर चमकता है। जिंदगी भी तो एक खेल ही है, तो उसे खेल की तरह खेलो। चेतावनी की तरह स्वीकार करो। खेल में हार जीत लगी ही रहती है। प्रस्तुत पुस्तक में बहुत सी ऐसी घटनाएँ हैं जब जीवन ने बहुत सी परीक्षाएँ लीं। हमने भी डटकर सामना किया। सोच लिया था कि देखते हैं जिंदगी हमारे कितने इम्तिहान लेगी। वो इम्तिहान लेती रही और हमने भी हार नहीं मानी। कितनी ही चुनौतियाँ आईं, सबका डटकर मुकाबला किया। यह भी देखा कि ईश्वर अच्छे लोगों की ही ज्यादा परीक्षा लेता है। शायद इसलिए कि वो चाहता है कि ये लोग दुनिया के लिए एक मिसाल कायम कर सकें। शायद इसीलिए जीवन में कदम-कदम पर कठिनाइयाँ आईं और हर कठिनाई का डटकर सामना किया। घबरा कर नहीं। यह नहीं कि दुखी नहीं हुए। कई बार अपने बहुत करीबी की मौत से दिल को आघात भी लगा। फिर यही सोचकर सब्र किया कि होनी को शायद यही मंजूर था। ऐसी ही कुछ घटनाओं का जिक्र इस पुस्तक में किया गया है।

राधा गोयल

विकासपुरी,दिल्ली

अणुमेल - radhagoyal222@gmail.com

(1) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

पढ़ने के लिये मुझे न जाने कितने पापड़ बेलने पड़े। पाँचवीं कक्षा तक तो कोई मुश्किल नहीं हुई लेकिन पाँचवी पास करने के बाद बड़ी बहन को भी नहीं पढ़ाया था, इसलिए मेरे लिए भी पढ़ने पर पाबंदी थी। लेकिन मेरे जिद के आगे झुकना पड़ा और घर के पास ही बिरला स्कूल की एक ब्रांच के मिडिल स्कूल में मुझे दाखिला दिलवा दिया गया। छठी क्लास से अंग्रेजी थी। घर में किसी को अंग्रेजी नहीं आती थी। हिंदी सभी की बहुत अच्छी थी। यहाँ तक कि मेरे माता-पिता की भी... जो केवल दूसरी कक्षा पास थे। हिंदी इतनी अच्छी थी कि स्नाकोत्तर को भी मात दे सकते थे। हिस्ट्री की भी बहुत अच्छी जानकारी थी। घर में दुनिया भर के उपन्यास कॉमिक्स और सभी मासिक पत्रिकाएँ आती थीं लेकिन अंग्रेजी किसी को नहीं आती थी। हमारे मकान में एक पड़ौसी थे, जिन्हें हम चाचा जी कहते थे। वो चाचा जी सगे चाचा से भी बढ़कर थे। दादी के घर रहते हुए हम तीन बहनें थीं, भाई कोई नहीं था, इसलिए हमें मनहूस समझ कर कमरे से बाहर निकलने की भी मनाही थी। एक बहन और पाँच भाई संयुक्त परिवार से अलग होने के बाद पैदा हुए जिसमें एक 49 घण्टे बाद व एक दो साल बाद काल का ग्रास बन गया। चाचा और ताऊ का प्यार क्या होता है हमने कभी जाना ही नहीं क्योंकि उन दोनों के लड़के थे, लड़की कोई नहीं थी।

बात हो रही थी पड़ौस के चाचा जी की... जो मरते दम तक सगे चाचा की तरह... यहाँ तक कि जब पिताजी ने पैतृक सम्पत्ति छोड़ कर अपने पैसों से अशोकापार्क में मकान बनवाया तो उन चाचा जी ने हमारे साथ ही प्लॉट लिया। देख- भाल की जिम्मेदारी माँ की होती थी और सामान मँगाने की जिम्मेदारी चाचा जी की। मेरी माँ बहुत बुद्धिमान थीं, इसलिए पिताजी उनकी किसी बात को काटते नहीं थे। न ही किसी बात में दखल देते थे।

मकान तो हमने सन् 1966 में बनाया था। सन् 1958 में छठी कक्षा में दाखिला लिया। घर में किसी को अंग्रेजी नहीं आती थी। चाचा जी के ऑफिस से आते ही कूदकर उनके कमरे में पहुँच जाती थी और उनसे अंग्रेजी सिखाने के लिए कहती थी। स्कूल में अध्यापिका से कुछ भी पूछो तो बहुत डाँट पड़ती थी। मुझे समझ नहीं आता था कि put पुट है तो but बट क्यों है। che केमिस्ट्री है तो cho चोपड़ा क्यों है, जबकि दोनों में वॉवल है। चाचा जी से भी डाँट पड़ती थी कि दफ्तर से आकर चाय तो पी लेने दे। खैर धीरे-

धीरे उन्हें पता लग गया था के पिताजी के आने के बाद मुझे पढ़ने का मौका नहीं मिलेगा। पिताजी दुकान से आते ही खाना खाते थे। खाते-खाते उपन्यास वगैरा पढ़ते रहते थे। गर्मियों में छत पर तराई भी करनी होती थी। दीवारों पर भी पानी डालना होता था। आज की तरह बिजली के पंखे नहीं होते थे। हाथ के पंखे होते थे।

बाद में तो मेरी क्लास में एक ऐसी लड़की आई जो इंग्लिश मीडियम स्कूल से पाँचवी कक्षा पास करके आई थी। बस उससे दोस्ती कर ली। मैं उसे हिंदी सिखाती थी और वह मुझे अंग्रेजी सिखाती थी।

छत पर तराई करने का भी मजेदार किस्सा है।

--00--

(2) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

पाँचवीं तक पढ़ाई करने के पश्चात पढ़ाई पर पाबंदी लगा दी गई। 'अब पढ़कर क्या करना है? शादी के बाद घर के काम ही तो करने हैं।' हमने भी हठ पकड़ ली। घर के पास ही कमला नगर में डी-ब्लॉक में रहते थे और डी-ब्लॉक में ही छठवीं से आठवीं तक का स्कूल था। एक शर्त पर आगे पढ़ने की अनुमति मिली कि घर का सारा काम करके जाएगी। चार बहनों के बाद एक भाई। जाहिर सी बात है कि हम बहनों को उससे बहुत लगाव था। बहुत छोटा था तो माँ का सारा समय उसे देखने में बीत जाता था। मेरी पढ़ने की हठ के कारण मुझे दाखिला दिला दिया गया।

छठी क्लास में दाखिला लिया तो पहले से ही यह हिदायत दे दी गई थी कि सुबह कब काम करके जाएगी रोटियाँ तू बना कर जाएगी। दो बहन और भाई बहुत छोटे थे। शुरू से ही आदत थी कि पाठ्यक्रम की पुस्तकें आते ही उन्हें 2 दिन में पढ़ लेती थी और वह ऐसे रट जाती थीं जैसे मैंने रट्टा मारा हो। फिर पूरा साल पढ़ने की जरूरत नहीं होती थी। गृह कार्य मिलता था जो आराम से हो जाता था। वैसे भी आजकल की तरह पढ़ाई की मारामारी नहीं थी। पाँचवी तक का गणित तो बहुत आसान था। छठी कक्षा से ज्योमेट्री और बीजगणित शुरू हुआ जो समझ नहीं आता था। अध्यापिका ब्लैक बोर्ड पर ड्रॉइंग की तरह से फार्मूला लिख देती थीं। उनसे पूछो... यह क्या है, तो पेट में किताब मारती थीं और कहती थीं, "बोर्ड पर लिखा हुआ है ना।" अब बोर्ड पर तो ड्राइंग बनी हुई है। कैसे पता लगे कि वृत्ताकार, आयताकार,

गोलाकार क्या है। 90 डिग्री, 70 डिग्री क्या है। वह भी चाचा जी से सीखा। गणित केवल आठवीं कक्षा तक ही रहा।

गर्मियों में मेरी छोटी बहनें व माँ बाप और भाई ऊपर छत पर सोते थे। छत पर पानी डाल कर तराई करना और बिस्तर बिछाना मेरी जिम्मेदारी थी। शाम को मेरी बड़ी बहन खाना बनाती थी, लेकिन मुझ पर पूरी धाक जमाकर। सवेरे तो मेरी ही जिम्मेदारी थी। शाम को भी खाना तब बनाती थी जब बाकी सारे कामों की मुझसे हाँ करवा लेती थी।

'जीजी तुम खाना बना लो'।

'ना'

'अच्छा! बर्तन मैं साफ कर लूँगी।'

'ना'

'अच्छा! छत पर तराई भी मैं कर आऊँगी। ऊपर बिस्तर भी बिछा आऊँगी।'

'अच्छा! ठीक है। मैं बना देती हूँ खाना, लेकिन सवेरे तू ही बनाएगी। मैं क्या पागल हूँ जो पूरे दिन काम में जुती रहूँ और तू महारानी की तरह स्कूल चली जाए।'

'ठीक है जीजी! सवेरे मैं रात के सारे बरतन साफ करके, घर की सफाई करके और सबके लिये फुल्के बनाकर जाऊँगी। तुम सिर्फ सब्जी बना देना।'

मैं और मेरी बहन नीचे कमरे के बाहर सोते थे। एक दिन रात को दो बजे नींद खुली। अंगीठी सुलगाई और फुल्के बना दिये। रसोई में खटर-पटर की आवाज सुनकर माँ की नींद खुली और ऊपर से ही आवाज लगाई 'रसोई में कौन है?'

'मैं हूँ।'

'क्या कर रही है?'

'रोटी सेक रही हूँ'

माँ फौरन उतरकर नीचे आईं। मैंने रोटियों का ऊँचा ढेर सेंक कर रखा हुआ था। बड़ी डाँट पड़ी। 'नासखेत! करमठोक! टाइम क्या हुआ है? अभी दो बजे हैं और तूने अभी से खाना ठेक कर रख दिया।'

'फिर तुम स्कूल नहीं जाने दोगी ना, इसलिए बना दिया। 'मैंने बिसूरते हुए कहा

'तो क्या तू रात को दो बजे खाना बनाकर रख देगी?'

माँ स्कूल में मेरी चोटी बनाकर ऐसे भेजती थीं कि वो चोटी तनकर बिल्कुल सीधी खड़ी हो जाती थी। घर से तो मैं ऐसे ही चली जाती थी लेकिन

रास्ते में जाते-जाते उस चोटी को खोलकर दो चोटियाँ बना लेती थी, क्योंकि जो चुटिया माँ बनाती थी, वह बिल्कुल गाँव के गवट्टो की तरह से होती थी। वापसी में दोबारा से चोटी खड़ी करके बना लेती थी। अचानक एक दिन किसी काम से माँ स्कूल में पहुँच गईं। मैंने दो चोटियाँ बनाई हुई थीं। फिर तो घर में आकर जो कुटाई हुई, जो कुटाई हुई... कि बस कुछ ना पूछो। साथ-साथ धमकी भी मिली कि आइंदा ऐसा किया तो खबरदार! स्कूल से नाम कटवा दूँगी। फिर तो हम जरा ज्यादा ही सावधान हो गए। स्कूल जाते हुए तो दो चोटियाँ कर लेते थे लेकिन छुट्टी होने से पहले ही खड़ी चोटी कर लेते थे क्योंकि मुझे मालूम था कि माँ इस समय डॉक्टर के पास आयेंगी तो हो सकता है कि स्कूल में भी एक चक्कर मार लें।

बचपन में मैं बड़ी शैतानियाँ करती थी जिसके लिए मार भी बहुत पड़ती थी। माँ जब भाई को दिखाने कहीं दूर डॉक्टर के पास जाती थीं तो ताँगे में बैठ कर जाती थीं। उन दिनों ताँगें चलते थे। हमारी एक मामी की मृत्यु हो गई थी। माँ मामी के बच्चों की देखभाल भी करती थीं। वहाँ भी उनका रोज ही चक्कर लगता था और वह मेरे स्कूल से लौटने के बाद ही लगता था। माँ घर से गई नहीं कि मैं गली में रफूचक्कर। वहाँ जाकर पहल दूज बनाकर अकेली खेलती थी। तांगा घूमकर दूसरी गली में से आता था। माँ को मामा के घर से आने और जाने में कम से कम एक डेढ़ घंटा लगता था। उस एक घंटे में मैं कभी स्टापू तो कभी पहलदूज तो कभी रस्सा कूदती थी। इन कामों की सख्त मनाही थी। ताँगे की खटपट की तरफ भी ध्यान रहता था। ताँगे की आवाज सुनते ही दौड़कर रसोई में आती थी। नल के नीचे बाल्टी लगाकर धड़ाधड़ बर्तन साफ करके पत्थर पर रखती थी। रोजाना रेस लगा कर कि मैंने आज कितनी देर में फलाँ काम किया। यह मेरी शुरू से ही आदत रही थी। जैसे खबरें आते समय उनको लिखना... जिससे कि लिखने की रफ्तार बनी रहे। गृह कार्य मिलता था। उसको बड़े सुंदर अक्षरों में लिखना... जिससे कि लेखन सुंदर रहे। रोजाना एक ईडियम, एक मुहावरा, एक अंग्रेजी का कठिन शब्द याद करना और उसे गाते-गाते काम करते रहना। इस तरह से एक साल में 365 मुहावरे और 365 कठिन शब्द याद हो जाते थे और वो भी बिना समय गवाएं।

बात हो रही थी बर्तन साफ करने की। माँ ऊपर आकर पूछती थीं 'रानी! तू नीचे पहलदूज खेल रही थी ना?' 'नहीं अम्मा! मैं तो इतनी देर से बर्तन साफ कर रही हूँ। देखो कितने ढ़ेर बर्तन साफ कर लिए हैं।' ढेर बर्तन

साफ किए हुए देखकर माँ को तसल्ली हो जाती थी कि शायद उन्होंने गलत देखा था। हाँ! कभी-कभी हम गिट्टे खेलते हुए पकड़े जाते थे। फिर तो जो धुनाई होती थी, जो धुनाई होती थी कि कुछ पूछो मत। लेकिन हम भी मौका मिलते ही अम्मा के जाते ही यह सब काम जरूर करते थे।

ऐसी शैतानियाँ मैंने केवल आठवीं कक्षा तक ही की थीं। उसके बाद तो जीवन में एकदम परिवर्तन आ गया था। जब सन् 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो जिंदगी ने एकदम नया मोड़ ले लिया। गाँधी जी से प्रेरित होकर मैंने अपने खाने-पीने की आदतों में भी बदलाव किया।

--00--

(3) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

बात सन् 1960-61 की है। आठवीं का परीक्षा देने के बाद मैं दादी के घर रहने चली गई थी। दादी ने मुझे और मेरी सबसे छोटी बुआ जी को सिलाई के स्कूल में दाखिला दिलवा दिया। मेरी बुआ जी मुझसे केवल एक महीना बड़ी हैं। आगे पढ़ने की सख्त पाबंदी थी इसलिए दादी ने सिलाई के स्कूल में दाखिला दिलवाया। स्कूल बिल्कुल पास पाँच मिनट की दूरी पर था। दादी का सोचना था कि लड़कियों को घर के सारे काम आने चाहिएँ। पहला ही दिन था। जब हम दोनों घर में नजर नहीं आईं तो दादाजी ने दादी से पूछा, "रानी और उर्मिल कहाँ हैं?"

"होंगी यहीं कहीं घर में।"

दादा जी ने तीन मंजिल तक सारा घर ढूँढ मारा। यहाँ तक कि स्नानागार और शौचालय तक में तीन-तीन बार देख लिया। हम होते तो दिखाई देते। पूछ-पूछ कर दादी की जान खा ली। अब दादी क्या बताएँ। दादा जी लट्ठ लेकर मुख्य द्वार पर बैठ गए क्योंकि उनको दादी की शक्ल से लग रहा था कि वह कुछ छुपा रही हैं। दादी की जान निकल रही थी कि यदि दादा जी को पता लग गया कि उनसे पूछे बिना दादी ने यह कदम उठाया है तो दादी की और हमारी खैर नहीं है। वह किसी पड़ौसी का हाल-चाल जानने के बहाने से घर से निकलीं। हमें स्कूल से ले आईं। हमें बता दिया कि मुख्य दरवाजे से मत जाना। दादा जी लट्ठ लेकर वहाँ बैठे हैं। हम साथ वाले पड़ौसी के घर की छत फलाँग कर अपने घर की छत पर आये और छत पर ही बैठ कर गप्पें लगाने लगे। दादी हमारे साथ नहीं आईं। वो पड़ौसी के यहाँ बैठ गईं और हमारे पहुँचने के 15 मिनट के बाद पड़ौसी के घर से निकलकर मुख्य

दरवाजे से घर में आईं जहाँ दादा जी लट्ठ लेकर बैठे थे। दादा जी ने फिर दादी से पूछा कि दोनों कहाँ है। दादी का फिर वही उत्तर था, "दोनों कहाँ जायेंगी? घर में ही होंगी।"

"मैंने सारा घर देख लिया है। दोनों कहीं नहीं हैं।"

"मैंने उन दोनों को अपनी जेब में तो रखा नहीं हुआ। तुमने कहाँ-कहाँ देखा?"

"सारा घर देख लिया।"

"छत पर जाकर देखा?"

"नहीं, बस छत पर जाकर ही नहीं देखा।"

"हो सकता है दोनों वहाँ बैठी हों। एक बार वहाँ भी जाकर देख लो।"

दादा जी छत पर गए। हम दोनों वहीं बैठे हुए थे। दादा जी को शांति पड़ गई मगर दादी ने तब से कान पकड़ लिए। पढ़ने पर तो पहले ही बंदिश थी, अब सिलाई सीखने पर भी बंदिश लग गई। मुझे भी आगे पढ़ने की इच्छा थी और मेरी बुआ जी की भी आगे पढ़ने की इच्छा थी। मैंने रो- रोकर अपने पिताजी को मनाया और पत्राचार माध्यम से पंजाब यूनिवर्सिटी से मैट्रिक की परीक्षा बहुत अच्छे अंक लेकर पास की।

--00--

(4) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

आठवीं कक्षा तक सरकारी स्कूल में पढ़ाई की। आगे पढ़ने के लिए लगातार एक महीने तक खुशामद करने के पश्चात पत्राचार माध्यम द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा दी व दिल्ली में टॉप पर रही। फिर पढ़ाई की बंदिश। किंतु पढ़ने की ललक के कारण मैंने भी हठ पकड़ ली। हमारे घर में किताबें बहुत आती थी तथा तीन अलग-अलग तरह के अखबार आते थे। एक अखबार में जयपुर के पिलानी स्थित कॉलेज में डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए फॉर्म निकले थे और उसमें शैक्षणिक योग्यता के हिसाब से मैं फिट थी। बिना किसी को बताए मैंने फॉर्म भरकर पोस्ट कर दिया था। पिलानी इंस्टीट्यूट से मेरा आवेदन स्वीकृत हो गया था और वहाँ से एडमीशन का फार्म आ गया। माँ को बड़ी मुश्किल से राजी किया कि तुम बहुत बीमार रहती हो। यदि मैं डॉक्टर बन गई तो तुम्हारा भी इलाज कर पाऊँगी और ऐसे लोगों का भी इलाज कर पाऊँगी जो महँगा इलाज नहीं करा सकते। गाँव में जाकर समाज सेवा का काम करूँगी। माँ ने समाज सेवा करने के काम को चाहे दिल से

स्वीकार न किया हो, किंतु मुझे पढ़ाई करने की अनुमति दे दी। मैं फार्म भरकर उसको पोस्ट करने जा रही थी कि सीढ़ियों में मामा जी मिल गए।

"कहाँ जा रही है रानी? मामा जी ने मुझसे पूछा।" मैंने चहक कर कहा कि मेरा पिलानी में दाखिला हो गया है। उसी का फार्म जमा करने जा रही हूँ। "अच्छा पहले ऊपर आकर पानी वानी पिला, "कहकर लिफाफा मेरे हाथ से ले लिया। ऊपर आकर लिफाफा फाड़ा और माँ से कहा, **"जीजी! क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? लड़की को डॉ बनाओगी तो लड़का भी डॉ ही ढूँढना पड़ेगा और दहेज भी देना पड़ेगा और डॉक्टर लड़का कहाँ से मिलेगा?"** डॉक्टर बनने के सारे अरमान राख होकर रह गए, लेकिन मैंने भी हिम्मत नहीं हारी। हायर सेकंडरी करने की हठ पकड़े रखी। शाम को पिताजी के दुकान से आते ही मेरा टेपरिकार्डर चालू हो जाता था, **"पिताजी! मुझे आगे पढ़ना है।"**

"करमठोक! नासखेत! अभी थके हुए आए हैं और तू शुरू हो गई। जब मना कर दिया तो समझ में नहीं आता? "माँ कहतीं, लेकिन मेरे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। दो महीने लगातार खुशामद की। आखिर मेरी हठ के आगे पढ़ने की इजाजत मिली। पत्राचार माध्यम द्वारा ही पंजाब यूनिवर्सिटी से सन् 1964 में हायर सेकेंडरी की परीक्षा दी तथा पूरी दिल्ली में टॉपर रही। उसका भी एक मजेदार किस्सा है।

एक बार एक ज्योतिषी जी आए हुए थे सभी लोग अपना हाथ दिखा रहे थे। मैंने भी उत्सुकतावश अपना हाथ दिखा दिया उन्होंने हाथ देख कर कहा पास होने में संदेह है। दिल में सोचा कि शायद ठीक ही कह रहे हैं, क्योंकि हमारे साथ ऐसा नहीं था कि घर का काम छोड़कर पढ़ सकें। घर का सारा काम करना पड़ता था, जो मैं और मेरी बड़ी बहन करते थे। ज्यादा गर्मियों में हम दोनों बहनें भी छत पर सोती थीं। रात को जब लघुशंका के लिए उठती थी तो देखती थी कि साथ वाले मकान की छत पर मेरी क्लास की छात्रा हाथ में लालटेन लेकर घूमते हुए पढ़ती रहती थी। तब मैंने सोचा कि मैं तो केवल सुबह चार से पाँच बजे तक ही पढ़ती हूँ। दिन में तो पढ़ने का मतलब ही नहीं है। मैं केवल पास ही हो पाऊँगी और यह प्रथम आएगी। उन दिनों अखबार में रिज़ल्ट आता था। जब रिज़ल्ट आया तो मैंने अखबार में ऊपर नहीं देखा। नीचे ही अपना रोल नंबर देख रही थी। नीचे कहीं अपना रोल नंबर नजर नहीं आया। मैंने यह सोच कर रोना शुरू कर दिया कि मैं फेल हो गई। थोड़ी देर में हमारे कोचिंग इंस्टिट्यूट से तीन चार लड़कियाँ आईं और चहकते हुए बोलीं, "राज! राज! तू सारी दिल्ली में फर्स्ट आई है।"

"मेरा तो अखबार में रोल नंबर ही नहीं है।" मैं रोते हुए बोली

उन्होंने मेरे हाथ से अखबार लिया और सबसे ऊपर उंगली रखकर बताया, "यह देख, सबसे पहला तेरा ही रोल नंबर है।" खुशी के मारे मेरी आँख से आँसू निकल आए। लड़कियाँ बोलीं, "चल, सर तुझे बुला रहे हैं। मैं उनके साथ इंस्टिट्यूट गई। प्रिंसिपल ने कहा कि मैं अखबार में तुम्हारी फोटो दूँगा। फलाँ कॉलेज में गज़ट आया है। लड़कियों के साथ वहाँ जाओ। उनको भी तो पता लगे कि जो छात्रा पूरी दिल्ली में फर्स्ट आई है, वह हमारे इंस्टिट्यूट की लड़की है। खैर जी! उनके कहने पर हम उस कॉलेज में गये। गज़ट देखा। उसमें अपना नाम, रोल नंबर देखा। मेरे साथ जो लड़कियाँ गई थीं, उन्होंने ही बता दिया कि यह हमारे फलाँ इंस्टिट्यूट की लड़की है। प्रिंसिपल मेरी फोटो अखबार में देना चाहते थे जिससे कि उनके स्कूल का प्रचार हो। मेरे पिताजी चाहते थे कि उसमें उनका भी नाम आए। फोटो खिंचवाया गया। शादी के पश्चात जब मेरी पुत्री दो माह की थी, तब एक बार वहीं पास में किसी समारोह में जाना था तो मैं उस इंस्टिट्यूट को देखने का मोह संवरण नहीं कर पाई। देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उस समय भी प्रिंसिपल के ऑफिस में मेरी वह फोटो लगी हुई थी। रोज सबको बतलाते थे कि यह हमारे इंस्टीट्यूट की पढ़ी हुई छात्रा है। उस दिन भी उन्होंने सारी कक्षाओं में ले जाकर मेरा परिचय कराया। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि विवाह से पूर्व मेरा नाम राजरानी था। पहले भी रानी थी, विवाह के बाद भी रानी थी, केवल **ज** का **धा** हो गया था। नाम परिवर्तन की यह सूचना अखबार में भी दी गई और मेरे सभी सर्टिफिकेट भी राधा गोयल के नाम से बनाने के लिये आवेदन किया। मायके में सब मुझे रानी और ससुराल में राधा कहते हैं।

उसके बाद तो हरसंभव कोशिश के बाद भी आगे पढ़ने की इजाजत नहीं मिली। कहा गया कि शादी के बाद तो चूल्हा चौका ही संभालना है।

--00--

(5) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

आगे पढ़ने के अनुमति नहीं मिली और मुझे कटिंग टेलरिंग के लिए उषा सिलाई स्कूल में दाखिला दिलवा दिया गया। बहुत अच्छा स्कूल था। एक साल का डिप्लोमा कोर्स था। हमारी अध्यापिका बहुत दक्ष थीं। सिलाई बहुत दिल से सिखाती थीं। उस काम में मुझे भी मज़ा आने लगा। वैसे नियम था कि एक सप्ताह में एक चीज की ड्राफ्टिंग देकर उसी का अभ्यास करवाना है।

मैं हर रोज दिये गये ड्राफ्ट को अगले दिन... सिलकर, काज, बटन, तुरपाई समेत पूरा करके ले जाती थी। कोई कमी न होने के कारण अध्यापिका को दूसरी तरह का ड्राफ्ट देना पड़ता था। वे मेरे इस कौशल से बहुत अधिक प्रभावित थीं। उन्हीं दिनों पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था। हमारे स्कूल में सैनिकों के लिए वर्दियाँ सिलने के लिए आईं। मैंने एक-एक दिन में कई वर्दियाँ सिलीं। उन दिनों लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री थे। उन्होंने लोगों से एक दिन का खाना छोड़ने का आव्हान किया और **जय जवान जय किसान** का नारा दिया। उन दिनों लोगों ने प्रधानमंत्री राहत कोष में बढ़-चढ़कर योगदान दिया। मेरे दिल में भी देश के लिए कुछ करने का जुनून था। मैंने अपनी प्रधानाचार्या से कहा कि, **"हम प्रधानमंत्री राहत कोष में पैसे जमा करने के लिए क्यों ना अपने सिले हुए कपड़ों की एक प्रदर्शनी लगाएँ और उनसे जो पैसा मिले, उसे राहत कोष में जमा कराएँ?"** काम उन्हें असंभव सा लग रहा था, किंतु ललक हो तो संभव करके दिखाया जा सकता है, जो हमने अपने बलबूते संभव करके दिखाया। अब तो पढ़ाई की तरफ से दिमाग एकदम हट गया और दूसरी तरफ मुड़ गया। अब दिमाग में केवल देश के लिए कुछ करने की ललक थी। स्कूल के आस-पास बहुत से शोरूम और बड़ी-बड़ी दुकानें थीं। गत्ते के 10-10 ₹ के टिकट बनाए। बड़ी दुकानों और शोरूम में बाँटे। सबसे कहा कि हम प्रधानमंत्री राहत कोष में अपना योगदान देना चाहते हैं, जिसके लिए अपने हाथ से सिले हुए कपड़ों की प्रदर्शनी लगा रहे हैं। हमें प्रोत्साहित करने के लिये आप उसे देखने आएँ और जो कपड़े आपको पसंद हों, उन्हें लेकर जाएँ। उससे जो पैसा प्राप्त होगा, उसे हम प्रधानमंत्री राहत कोष में जमा करेंगे। यह सब काम मैंने अकेले अपने बलबूते किया। लंबी कहानी है विस्तार से बाद में बताऊँगी।

मुझे सिलाई, कढ़ाई, बुनाई सभी कुछ इतनी अच्छी तरह आ गई थी कि मेरी बड़ी बहन ने भी उसी स्कूल में मेरे साथ सिलाई का प्रशिक्षण लिया। हालाँकि वह पहले घर के पास ही एक स्कूल में सिलाई सीख चुकी थी लेकिन जब उसने देखा कि हमारे विद्यालय में छह तरह की फ्रॉक, छह तरह के ब्लाऊज़, बचे खुचे टुकड़े से अन्तर्वस्त्र बनाना सिखाते थे, जबकि जहाँ बहन ने सिलाई सीखी थी, वहाँ केवल एक तरह के फ्रॉक व ब्लाऊज़ सिखाए गए थे। बहन ने भी मेरे स्कूल में दोबारा से दाखिला लिया। उसके विवाह में उसकी शादी की साड़ी भी हमने गोटे के जाल से घर में ही बनाई थी। उन दिनों तो पेटीकोट भी कढ़ाई करके बनाए जाते थे। सुऐं से छेद करके काज वर्क के

डिजाइन बनाए जाते थे। चादरें, मेजपोश, तकिए के गिलाफ, टी-पॉट कवर... सभी कढ़ाई करके बनाए जाते थे। बहन की शादी में एक भी कपड़ा बाहर से नहीं सिलवाया। सारे परिवार के कपड़े घर में ही सिले। यहाँ तक कि अस्तर वाले ब्लाउज़ भी। उसकी बेटी पैदा हुई... तब सारे कपड़े मेरे हाथ से बने हुए थे। उसके ससुराल में सभी देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे कि इतने अच्छे डिज़ाइनर कपड़े किस दुकान से लिये हैं। बच्चे के गले में कपड़ों को गन्दगी से बचाने के लिये जो **बिब** लगाते हैं, वे भी कढ़ाई करके बनाई हुई थीं। तरह-तरह की खूबसूरत फ्रॉक, कोट फ्रॉक, स्मोकिंग, अंब्रेला कट, गोलघेरे व ऐ लाईन की फ्रॉक। बच्ची के अंडरवियर भी फ्रिल लगे हुए और बड़े आकर्षक... जबकि वे कपड़ों की कतरन जोड़कर बनाई गई थीं। मेरी बहन से कहा, "अपनी माँ से पूछना कि इतने सुंदर कपड़े कौन सी दुकान से खरीदे हैं? हम भी लेकर आयेंगे।" जब पता लगा कि वे कपड़े बाजार से नहीं खरीदे गए, बल्कि उसकी बहन ने बनाए हैं तो सभी आश्चर्यचकित रह गए। रिश्ते आने शुरू हो गये। माँ मेरे विवाह के तैयारियों में लग गईं। वैसे भी हमारे जमाने में लड़की के 16 साल की होते ही विवाह के लिए चादर काढ़ना, साड़ी पर कढ़ाई करना, खूबसूरत सीनरी बनाना, प्लास्टिक के तार से टोकरी बुनना जैसे काम शुरू कर दिए जाते थे जबकि मैं तो 18 वर्ष की हो चुकी थी। पर अभी केवल पढ़ाई से संबंधित।

--00--

(6) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

मैंने स्नातक कब और कैसे किया, वह बाद में। उससे पहले और बहुत कुछ बताने के लिये है।

सन् 1970 में सात बहन भाइयों के एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में विवाह हुआ। ससुर की बहुत पहले मृत्यु हो चुकी थी। पति परिवार में सबसे बड़े थे और उस वक्त अकेले कमाने वाले थे। सबकी जिम्मेदारी उनके कंधों पर थी। पिता मेरे पति को उनके ऑफिस में देख कर आए थे। किसी रिश्तेदार ने लड़का बताया था। उन्हें पता था कि मैं उस घर में एडजस्ट कर सकती हूँ। उन्हें मेरी आदतों के बारे में मालूम था। मेरी शुरू से यह तमन्ना थी कि एक ऐसा गाँव बसाऊँ, जिसमें कोई गरीब न हो। सबको सब तरह की सुविधाएँ हों।

मेरे दो फूफा जी मेरे ससुराल के आस-पास ही रहते थे। जब उनको पता चला कि जिस घर में रिश्ता किया है जिसमें 6×12 का केवल एक कमरा

है, जिसमें इतना बड़ा परिवार रहता है। इतने बड़े घर से इतने छोटे घर में कैसे एडजस्ट कर पाएगी। वही एक कमरा... रसोई भी है और स्नानागार भी... बैठक और शयनकक्ष भी। फूफा जी ने बहुत समझाया कि लड़की सारी उम्र काम करते-करते मर जाएगी लेकिन अपनी सुविधाओं के नाम पर एक रुमाल भी नहीं खरीद पाएगी। सारी उम्र ननद देवरों की शादी करने और कर्जा चुकाने में बीत जाएगी। बहुत समझाने के बाद भी पिताजी नहीं माने क्योंकि वो तो मेरे पति के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित थे। घर नहीं देखा था। पति को ऑफिस में ही देखकर आए थे। माँ ने भी यही कहा कि, "**तेरी यही तमन्ना थी ना कि तू एक ऐसा गाँव बसाना चाहती थी, जहाँ सबको सब तरह का सुख दिलवा सके। तेरा ससुराल भी एक छोटा मोटा गाँव ही है। जाकर वहाँ सबको सुखी रखना।**"

हमने भी इसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया। मायके में सभी प्रकार की सुविधाएँ थीं और ससुराल में हर प्रकार की सुविधा का अभाव था, किंतु सच्चाई यह भी है कि सुविधाओं में रहते हुए तो हम बड़ी आसानी से कह देते हैं कि हम कम आमदनी में भी गुजारा कर सकते हैं, लेकिन जब यथार्थ की कठोर धरती पर कदम रखते हैं, तब उनका किस प्रकार के सामना कर पाते हैं, उस वक्त हमारी परीक्षा की घड़ी होती है।

जब मुझे दिखाने की रस्म की गई तो सभी ने पसंद कर लिया। पति का दोस्त मुझे और इन्हें अलग ले गया। पति ने मुझसे पूछा, "नौकरी करना पसंद करोगी?" मैंने स्पष्ट उत्तर दिया कि **मैं नौकरी नहीं करूँगी। नारी घर की शोभा होती है। उसका काम होता है कि वह घर में रहकर घर को संभाले और सबकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखे, क्योंकि नारी ही घर का निर्माण करती है। घर के प्रबंधन में उसका सबसे बड़ा योगदान होता है। पुरुष का काम है नौकरी करना और स्त्री का काम है घर संभालना।**" इतना कहने के बावजूद भी मुझसे विवाह के लिए हामी भर दी गई। (मेरे कहे गये शब्द पति को आज तक भी अक्षरशः याद हैं।)

विवाह से एक माह पूर्व एक 6×8 का कमरा बनवाया गया। शादी के 4 वर्ष बाद मैंने नौकरी करनी शुरू की। नौकरी कैसे की... उसका भी बड़ा मजेदार किस्सा है।

--00--

(7) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

मैंने नौकरी करने से मना कर दिया, इसके बावजूद नौकरी की। कैसे???

जिस दिन नौकरी के लिए पेपर देना था, घर में 6 लोगों ने उसके लिए आवेदन किया हुआ था। एक मेरी देवरानी... जिसका अभी विवाह नहीं हुआ था, रोका हो चुका था। दो मेरे सगे देवर, एक ननद, एक बुआ सास और एक मौसी सास का लड़का। दोनों हमारे ही घर रहते थे। 3 महीने से सब लोग दिन रात पढ़ाई में लगे हुए थे। मेरा एक नम्बर का देवर... जिस दिन मुझे पसंद किया गया.... उसी दिन उसकी अपॉइंटमेंट लेटर आई थी। वो मुझसे रोज कहता था कि नौकरी कर लो लेकिन मैं मना कर देती थी। पति ने कई बार समझाया कि घर में रहकर दो मिनट भी बात नहीं कर पाते। नौकरी करेंगे तो कभी-कभी छुट्टी लेकर चुपचाप पिक्चर देखकर भी आ सकते हैं। कम से कम कॉफी हाउस में इकट्ठे बैठकर चाय पी सकते हैं। घर में तो हर वक्त घूँघट में रहती हो। तुम्हारी शक्ल देखने को भी तरस जाता हूँ, लेकिन मेरे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती थी। यहाँ तक कि जब छोटी ननद की शादी की, तब काफी मुश्किल आई। बड़ी ननद की शादी में तो कोई मुश्किल नहीं आई क्योंकि उनकी शादी मेरी शादी के एक वर्ष बाद ही हो गई थी। मेरे विवाह में जो सामान आया था, वह सब उनको दे दिया था, तो ज्यादा कर्ज नहीं लेना पड़ा। जो लड़का छोटी ननद के लिए देखा, वो सरकारी नौकरी में था और उसे सरकारी आवास मिला हुआ था। उसके माता पिता गाँव में रहते थे। पति की इच्छा थी कि विवाह उसी के साथ हो। लड़की का भविष्य सुरक्षित रहेगा। किंतु लड़के के माता-पिता की डिमांड बहुत ज्यादा थी। पति उनके माँ -बाप के पास चार चक्कर लगा आए और कई बार कहा कि मेरी इतनी हैसियत नहीं है, किंतु उन पर कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार मेरी सास ने कहा, "ठीक है, दुहाजू के साथ शादी कर दो।"

"दुहाजू के साथ क्यों? तुम तो सदा उमर रहोगी नहीं। बाद में ये दुखी रहेंगी तो क्या हम खुश रह पायेंगे?" मैंने कहा

"अब क्या करें? इतना पैसा नहीं है और तू नौकरी करने के लिए मानती नहीं है, तो फिर यही करना पड़ेगा।"

जिस दिन परीक्षा थी, बड़ा देवर बोला, "भाभी जी! तुम इन लोगों के साथ चली जाओ।"

"मगर मैंने तो फार्म ही नहीं भरा है।"
"नहीं, हमने तुम्हारा फार्म भरवाया था।"
"मगर मैंने तो कुछ भी पढ़ाई नहीं की है तो पेपर कैसे दूँगी?"
"उसमें सिर्फ जनरल नॉलेज के प्रश्न और निबन्ध व पत्र लिखने के लिये आएगा।" देवर बोला
"पक्का"
"हाँ, बिल्कुल पक्का।"

मेरी आदत थी कि जहाँ साइन करवाते थे, बिना पढ़े कर देती थी। इतना विश्वास था। वो आज भी कायम है। तब मेरी छोटी बिटिया होने वाली थी। आठ माह पूरे हो चुके थे, जब मैं परीक्षा देने गई। ऊपर वाले ने भी खूब सुनी। मैं पास हो गई और मेरी नौकरी लग गई। बाकी सभी रह गये। यह बात 30 मार्च सन् 1974 की है जब मैंने नौकरी ज्वाइन की। नौकरी करने के लिये तो सासू माँ ने रजामन्दी दे दी लेकिन किताबें पढ़ने पर पूरी पाबन्दी थी। अखबार तक भी नहीं। आप सब सोचोगे कि हायर सेकेंडरी करके नौकरी कैसे लग गई। शायद प्रभु ने सुन ली। नौकरी के दौरान के कई रोचक किस्से हैं, वो कभी अलग से बताऊँगी। नौकरी लगने का एक फायदा हुआ कि मेरा लिखने का शौक पूरा होने लगा। कभी-कभी पिक्चर भी देख आते थे। आगे पढ़ने के बारे में विचार तब किया जब संयुक्त परिवार से अलग होकर विकासपुरी में घर बनाया।

--00--

(8) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

20/8/1980 में हम संयुक्त परिवार से अलग होकर विकासपुरी आ गये। यहाँ आवागमन की कोई सुविधा नहीं थी और न ही आवश्यकता की कोई वस्तु। यहाँ तक कि दूध भी नहीं मिलता था। पति को SAS पार्ट-1 की ट्रेनिंग करने के लिए जम्मू जाना पड़ा। मकान का ढांचा खड़ा हो चुका था लेकिन तब तक खिड़की दरवाजे भी नहीं लगे थे। गिनती के दस बारह मकान... दूर तक बियाबान जंगल। जब आँधी चलती थी तो लगता था कि कोई राक्षस अपना मुँह खोलकर बाहें फैलाये निगलने के लिये आ रहा है। खिड़की में दरवाजे नहीं लगे थे। स्टोव जलाने पर बार-बार बुझ जाता था। घर के साथ ही नाली थी। बरसात में मेंढक और साँप घर में आ जाते थे। खेती की जमीन होने के कारण मच्छरों की भरमार थी। मेरे बेटे ने तो इसका नाम ही मच्छरपुरी रख दिया

था। पति को मालूम था कि SAS की ट्रेनिंग के बाद उनकी प्रोन्नति हो जाएगी। वैसे भी उनकी शुरू से ही इच्छा थी कि मैं आगे पढ़ूँ, किंतु संयुक्त परिवार में रहते हुए यह संभव नहीं था। विकासपुरी आकर भी एक ही साल में तीन बार टाइफाइड और चार बार मलेरिया हुआ। एक बार संयुक्त परिवार में रहते हुए टाइफाइड हो चुका था। एक बार पैर पर ईंटों का चट्टा गिर पड़ा। एक बार बुरी तरह बिजली का करण्ट लगा। गर्मी की छुट्टियों में एक महीना जम्मू रहकर आए। उस दौरान भी टायफाइड हुआ। सारे लक्षण मलेरिया वाले थे। अस्पताल में दिखाया तो पता लगा कि टायफाइड है। बुखार भी 105 डिग्री। उस पर ननद की देवरानी परिवार समेत वैष्णो देवी आईं तो हमारे यहाँ दो दिन ठहरीं। उन सबका खाना बनाया। आदत जो थी। संयुक्त परिवार में रहते हुए भी बड़ी से बड़ी बीमारी में सभी काम करने पड़ते थे। वहाँ तो इतने आने वाले थे कि वह घर कम... सराय ज्यादा लगता था। इसलिए आदत पड़ चुकी थी। मायके में तो 99 डिग्री बुखार होने पर पूरा आराम करने की हिदायत दी जाती थी और उसका सख्ती से पालन भी करवाया जाता था।

जम्मू से वापस आए तो तीज के मौके पर बड़े मामा जी के लड़के का सड़क दुर्घटना में देहान्त हो गया। उसके विवाह को केवल डेढ़ महीने हुआ था। वहाँ आना-जाना लगा रहा। इतना सब होने से स्नातक के लिये आवेदन करने के बारे में कुछ भी नहीं सोच पाई।

1982 में पति SAS Part-11 करने के लिए दोबारा छह महीने के लिये जम्मू गये। वहाँ से बार-बार पत्र लिखते थे कि मैं स्नातक का फॉर्म भर दूँ। मैंने पता किया तो मालूम हुआ कि बी.ए ऑनर्स करने के लिए मुझे रेगुलर कॉलेज जाना होगा, जो संभव नहीं था। इसलिए मजबूरी में पास कोर्स के लिए आवेदन किया। तब भी पढ़ने का समय कहाँ मिल पाता था। तब गर्मी की छुट्टियों में दो महीना जम्मू रहकर आए। उसी दौरान कश्मीर घूमने भी गए। 104 बुखार में वैष्णो देवी भी गई। उसका भी मजेदार किस्सा है। पति ने कहा, "तुम्हें माँ के प्रति श्रद्धा नहीं है, इसलिये तुम्हें बुखार चढ़ा है"

"हाँ! ठीक कहा। मुझे श्रद्धा तो है लेकिन अंधश्रद्धा नहीं है। लेकिन अब बिना श्रद्धा के ही जाऊँगी। यहाँ तक कि हम भैरों मन्दिर भी गये। वहाँ जून के महीने में बर्फ देखकर सारा बुखार छू मन्तर हो गया। दो महीने की छुट्टियाँ बिताकर मैं बच्चों के साथ दिल्ली लौट आई। इनके सफल होने के सपने बुनने लगी। रोजाना इन्हें पत्र लिखना नहीं भूलती थी। अपने पढ़ने के लिए समय सोचने की फुर्सत किसे थी। उन दिनों तो खयालों में यही बसे रहते

थे। दो अक्टूबर को जब ये जम्मू से वापस आए तो जिन्दगी कुछ ढर्रे पर आई। अपने पढ़ने के लिये तो समय न के बराबर ही मिलता था, लेकिन यह बात जरूर है कि सुबह-सुबह चार बजे यूनिवर्सिटी से आए पाठ्यक्रम को उपन्यास की तरह पढ़ लेती थी।

घर का सारा काम... नौकरी... अपने बच्चों को पढ़ाना और अपनी पढ़ाई करना... इसके बावजूद भी मैंने स्नातक के प्रथम वर्ष में पूरी यूनिवर्सिटी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। जो प्रथम आई थी, उसका केवल मुझसे एक अंक ज्यादा था। यदि मेरा एक अंक ज्यादा होता तो मैं टॉपर होती। यूनिवर्सिटी की मैगजीन में मेरा संक्षिप्त परिचय व फोटो छपा। फोटो और बायोडाटा भेजने के लिए यूनिवर्सिटी से पत्र आया। जब पत्र आया, तब मैं घर में अकेली थी। खुशी के मारे नाचने लगी। दूसरा वर्ष भी आराम से बीत गया... लेकिन तीसरा वर्ष???

(9) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

सन् 1986... स्नातक का तीसरा वर्ष

एक अजीब तरह की बीमारी शुरू हो गई। हल्का सा शरीर हिलाने पर बाईं आँख में ऐसा लगता था जैसे कोई सुईयाँ चुभा रहा हो। दाएँ घुटने में जबर्दस्त दर्द होता था। जब दर्द बर्दाश्त से बाहर हो गया तो डॉक्टर को दिखाया। टेस्ट के बाद रिपोर्ट आई कि आँख में ट्यूबरक्लोसिस इंफेक्शन हो गया है यानी कि episclaritis infaction

विकासपुरी में रहते थे तब तक बसों की सुविधा तो हो गई थी लेकिन स्कूटर या टैक्सी वगैरह नहीं चलती थीं। मेरा इलाज दो जगह शुरू हुआ। **गुरु नानक नेत्र चिकित्सालय तुर्कमान गेट व एल.एन.जे.पी हॉस्पिटल।**

हर सप्ताह दिखाने जाना पड़ता था और दोनों ही जगह एक ही दिन में दिखाती थी क्योंकि इतनी छुट्टियाँ कैसे करती? वैसे भी हॉस्पिटल बहुत दूर था। किराया और समय दोनों ही खर्च होते थे। पहले गुरु नानक नेत्र चिकित्सालय प्रिस्क्रिपशन स्लिप पर नंबर डलवाकर डॉक्टर के कमरे में नम्बर लगाकर.... फिर एक किलोमीटर दूर एल.एन.जे.पी हॉस्पिटल पहुँचती थी।

वहाँ भी लाईन में लगकर प्रिस्क्रिपशन स्लिप की एंट्री करवाकर... डॉक्टर के कमरे तक पर्ची पहुँचाकर दोबारा नेत्र चिकित्सालय आती थी।

वहाँ डॉक्टर को दिखाकर पुनः एक किलोमीटर चलकर एल.एन.जे.पी जाती थी। वहाँ मेडिसिन के डॉक्टर को दिखाकर Super Store से दवाई लेकर धक्के खाते हुए बस में आना और घर का सारा काम करना।

अकेले आना जाना।

आँखें डायल्यूट भी होती थीं।

आँखों की एंजियोग्राफी भी हुई।

सब कुछ अकेले कराया। दवाई भी खुद लेकर आती थी क्योंकि पति रात के ग्यारह बजे तक आते थे। डॉक्टर ने तीन महीने का आराम लिख दिया था। उन्हीं दिनों मेरी बी.ए अंतिम वर्ष की परीक्षाएँ भी थीं। पढ़ने का बिल्कुल दिल नहीं करता था। बुरी तरह उल्टी की फीलिंग होती थी। कोई भी पेपर पूरा नहीं कर पाई थी।

उन्हीं दिनों पति ने यह सोचकर घर में अलमारियाँ बनवाने का काम शुरू करवा दिया कि मैं छुट्टी पर चल रही हूँ तो यह काम भी हो जाएगा। दिहाड़ी पर काम करवाया। कारपेंटर ने इतना दुखी किया कि तीन महीने में भी काम पूरा नहीं हो पाया। डॉ ने आराम करने की सलाह दी थी लेकिन आराम कहाँ से नसीब होता। अपनी बिमारी... हॉस्पिटल के चक्कर... तीन बच्चों की पढ़ाई... घर का सारा काम और कारपेण्टर के जाने के बाद घर की सफाई।

किसी से कहती भी नहीं थी। पति भी घर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नौकरी के अलावा पार्ट टाईम काम भी करते थे।

पूरे एक साल इलाज चला। डॉक्टर ने आराम करने के लिये लिख दिया। कुछ दिन तो मैंने आराम किया। शुक्र है कि मैंने उच्च शिक्षा के लिए पहले से ही आवेदन किया हुआ था। आवेदन करने पर ही सेवा पंजिका में दर्ज होता है और परीक्षाओं के दिनों में छुट्टी मिल जाती है। वेतन नहीं कटता।

उन्हीं दिनों ब्लड शुगर की बीमारी भी हो गई। स्कूल के रास्ते में ही एक अंतरराष्ट्रीय योग चिकित्सा केंद्र था। 3 महीने की ट्रेनिंग करके डिप्लोमा सर्टिफिकेट मिलता था। उसके लिए छुट्टी लेना अनिवार्य था क्योंकि वह फुल टाइम कोर्स था। सुबह 7:00 बजे से दोपहर के 12:30 बजे तक। उसके बाद भी पढ़ने के लिए बहुत कुछ होता था। होमवर्क मिलता था जो अगले दिन पूरा करके ले जाना होता था। अपने कार्यालय में डिप्लोमा के लिए आवेदन किया, जो स्वीकृत हो गया। 3 माह तक वहाँ योग का डिप्लोमा लिया। परीक्षा से एक महीने पहले ऑफिस से पढ़ने के लिये छुट्टियाँ ले लीं लेकिन पढ़ाई नहीं

कर पाई। उन्हीं दिनों पति ने घर में लकड़ी का काम शुरू करवा लिया जबकि मैंने छुट्टियाँ इसलिए ली थीं कि मेरी तबीयत बहुत ज्यादा खराब थी। हर वक्त उल्टी की फीलिंग होती रहती थी। अस्पताल जा जाकर भी तंग आ चुकी थी। अपनी दवाई भी खुद लेकर आती थी। दिखाने भी अकेली जाती थी। फिर आकर घर में बच्चों को भी देखना होता था। घर के सारे ही काम करने होते थे क्योंकि मैंने कोई मेड नहीं लगाई हुई थी। पति को तो एक रुमाल धोना भी नहीं आता था। उसके बाद आलम यह कि रोज पूछते थे कि आज कितने बोर्ड काटे। कितने पल्ले बनाये? क्या तुमने उन्हें नाप कर बता दिया था? यह हाल तो तब था जबकि मैं इतनी खराब तबियत में भी प्लाई और बोर्ड पर नाप के हिसाब से निशान लगाती थी कि लकड़ी बेकार न हो। उसका पूरा इस्तेमाल हो क्योंकि बढ़ई को क्या परवाह है। कौन सा उसकी जेब से पैसे खर्च हो रहे हैं। इसलिये नाप कर निशान लगा कर देती थी कि इधर से इतने पल्ले बन जायेंगे और इधर से बार्डर की पट्टी निकल आएगी।

मेरी तबियत का इतना बुरा हाल था कि परीक्षा में मैं कोई भी पेपर पूरा नहीं कर पाई। बुरी तरह उल्टी की फीलिंग होती रहती थी और बार-बार उठ कर भागना पड़ता था।फिर भी शुक्र है की तीनों वर्ष के नंबर मिला कर मेरे डिस्टिंक्शन नंबर थे। उसके बाद पति ने कहा कि मैं B.Ed कर लूँ। रोहतक यूनिवर्सिटी से पत्राचार माध्यम से B.Ed हो सकती थी।

(10) क्या-क्या न सहे हमने सितम पढ़ने की खातिर

स्नातक की पढ़ाई के बाद स्नातकोत्तर की तैयारी के लिये पुस्तकें भी ले ली थीं लेकिन मेरे घर में मेहमानों का इतना अधिक आवागमन रहता था कि पढ़ने की फुर्सत नहीं मिल पाती थी, और परीक्षा के दिनों में तो खास तौर पर। पति कभी यह बात नहीं सोचते थे कि कम से कम परीक्षा के दिनों में मेहमानों को किसी तरह से टरका दें। इसलिए स्नातकोत्तर की पढ़ाई करने का विचार मैंने बिल्कुल त्याग दिया। फिर पति की इच्छा के कारण B.Ed करने की सोची क्योंकि उसमें यदि शिक्षिका की नौकरी लग जाए तो छुट्टियाँ काफी मिल जाती हैं और बच्चों की परवरिश आराम से हो जाती है। घर गृहस्थी भी आराम से संभल जाती है।

नौकरी... घर का काम और तीन बच्चों के साथ B.Ed करने की ठानी। उसमें गृहकार्य भी बहुत मिलता है। सभी कुछ किया। जिन दिनों परीक्षाएँ थीं, पति के मित्र सपरिवार दिल्ली रहने आ गये। अब अपनी पढ़ाई करूँ या उनकी

सेवा करूँ। मैंने सोच लिया था कि मैं पेपर ही नहीं दूँगी क्योंकि हमेशा यही होता है। चाहे मेरी परीक्षाएँ हो या बच्चों की... विशेष रुप से उन्हीं दिनों अतिथियों का घर में ठहरना होता है और मेरा सारा समय उनके रहने, खाने और सोने की व्यवस्था में निकल जाता है। पति को मालूम था कि मैं वाकई परीक्षा नहीं दूँगी, इसलिए मुझे खुद बहादुरगढ़ की बस में चढ़ाकर आते थे।

इतनी गंदी जगह परीक्षा केंद्र था कि मैं बता नहीं सकती।

कोई बेंच नहीं...

कोई कुर्सी नहीं...

फर्श भी पक्का नहीं था।

मिट्टी का फर्श... उस पर केवल डेढ़ फुट चौड़ी दरी की पट्टियाँ बिछाई हुईं... हमें यह पता नहीं था कि हमें लिखने के लिए डेस्क नहीं मिलेगी, वरना हम अपने घर से ही कार्डबोर्ड और चिमटी ले जाते। शुक्र है कि परीक्षा होने से बहुत पहले चले गए थे। वहाँ कुछ कपड़े वालों की दुकान थी। उनसे बड़ी मिन्नत करके कपड़ों के थान में से गत्ता निकलवाया। चिमटी कहीं नहीं मिली। मजबूरी थी। क्या करती? अजनबी शहर कहो या गाँव... अजनबी चेहरे... जैसे-तैसे उसी गत्ते पर कागज रखकर लिखना शुरू किया लेकिन चींटियों ने काट-काट कर बेहाल कर दिया।

एक हाथ से खुजली करते जायें, एक हाथ से लिखते जायें, पेपर गत्ते पर से फिसलता जाए !

उस दिन का पेपर खत्म होने के बाद हमने स्कूल के प्रधानाचार्य से कहा कि हम इस तरह से परीक्षा बिल्कुल नहीं दे सकते। डेढ़ फुटी दरी और वह भी मिट्टी वाले मैदान में बिछी हुई... चींटियों ने काट-काट कर बुरा हाल कर दिया है। हमें कल से डेस्क चाहिए और स्कूल के किसी कमरे में, जिससे चीटियों से बचाव हो सके और कुछ लिख सकें।

अगले दिन पक्के फर्श वाले कमरे में डेस्क लगे हुए थे। इन्विजीलेटर स्थानीय थीं। दोनों ऊँची- ऊँची आवाज में अपनी सास की बुराइयाँ कर रही थीं। इतनी ऊँची आवाज में कि हमारे विचार बाधित हो रहे थे। उनसे आग्रह किया कि मैडम थोड़ा धीमी आवाज में बात कर लो। हम कुछ सोच नहीं पा रहे हैं। इस तरह से कैसे पेपर दें? बस हो गई बोलना शुरू...

"घर में सास्सू से भी ऐस्से ही बोल्लो हो? नणद सै भी ऐस्सै बोल्लो हो?" पाँच मिनट धाराप्रवाह बोलती रहीं। फिर कहना पड़ा- "ठीक है मैडम! आप बोलती रहिए।"

"क्यों? मेरा कै दमाग खराब हुआ सै कै मैं बोलती रहूँ। मैं क्यूँ बोल्लूँ ? मैं तो ना बोलती। मैं तो ना बोलती। मैं क्यों बोल्लूं? मेरा के दिमाग खराब सै" का गाना शुरू किया। पाँच मिनट यही बात दोहराती रहीं। झक मारकर कहा- "फिर चुप हो जाओ"

"मैं काहे को चुप होऊँ। मैं काहेएएएए चुप्प होऊँ? मैं तो ना होती चुप्प। तन्नै जो करना है कर ले।"

फिर कहना पड़ा-- मैडम! आज हम प्रिंसिपल साहब से कहेंगे। आपने इन्हीं सब बातों में हमारा आधा घंटा बर्बाद कर दिया है। आप अब टाईम देख लो। हम अपना पेपर आधा घंटा बाद देंगे। तब कहीं जाकर वो चुप हुईं।

अगले दिन मुझसे इस बात का भरपूर बदला लिया। हर पाँच मिनट बाद आएँ और मेरा कार्डबोर्ड पलट कर देखें। उससे मेरी विचारधारा बार-बार बाधित हो रही थी। जब यह तमाशा बीस बार हो चुका तब मैंने उनसे तल्खी से कहा- "मैडम, आप मेरे सर के पीछे खड़ी हो जाइए और मुझे देखती रहिए। यदि आपको संदेह है कि मैं नकल मार रही हूँ तो मेरे पीछे ही खड़ी रहिये मगर खबरदार कि मेरा गत्ता पलट- पलटकर देखा। मुँह बंद करके चुपचाप आँखें खोलकर केवल मेरे पीछे खड़ी होकर मुझे ही निहारती रहें और थोड़ा दूर खड़े होकर... ताकि आपकी पूरी दृष्टि केवल और केवल मुझ पर रहे। खबरदार अब मेरा पन्ना पलटा या मुझे बार- बार आकर परेशान किया। चुपचाप पीछे खड़ी होकर मुझ पर पूरी तरह से निगाह रखिए। और यदि अब मेरा पेपर पलटकर देखा तो मैं सीधी प्रधानाचार्य की कमरे में जाऊँगी और उनसे शिकायत कहूँगी कि वे मुझे अपने पास बैठकर परीक्षा देने दें। तब आपको स्वयं पता लग जाएगा कि मैं अपनी योग्यता के बलबूते पर लिख रही हूँ या नकल मारकर लिख रही हूँ। तब कहीं जाकर वे शांत हुईं। आज भी वो बी.एड की परीक्षाएँ याद आती हैं।

आप सोचेंगे कि फिर तो शायद मैंने शिक्षिका की नौकरी के लिए आवेदन कर दिया होगा। नहीं किया... क्योंकि ऑफिस में मेरे ऊपर पाँच लोगों का कार्य भार थोपा हुआ था। हर ऑफिस में मेरे साथ यही हुआ।यदि मैं शिक्षिका बन जाती तो ऑफिस में भी काम करना पड़ता और कक्षा में भी पढ़ाना पड़ता। दो नावों में सवार होने वाली स्थिति हो जाती और किसी भी काम के साथ न्याय नहीं हो पाता।

--00--

क्या-क्या न सहे हमने सितम

बड़ी ननद के विवाह से 15 दिन पूर्व मेरी बड़ी बेटी पैदा हुई। जिस दिन पैदा हुई, उसी दिन सुबह मेरी सास मुझे हॉस्पिटल दिखाकर लाई थीं। तभी डॉक्टर ने कहा था कि समय पूरा हो चुका है कभी भी डिलीवरी हो सकती है इसलिए इनको दाखिल करा दो। सास ने कहा कि मेरी बेटी का विवाह है। घर में काम करने वाली यही है, इसलिए इसको मैं दाखिल नहीं करूँगी। जब इसको दर्द उठेगा, तभी लेकर आऊँगी। संयोग की बात है कि शाम को हम सब बैठे खाना खा रहे थे कि मुझे लीकिंग शुरू हो गई। समझ नहीं आ रहा था कि बाथरूम रुक क्यों नहीं रहा। रोकने की बहुत कोशिश की लेकिन नाकामयाब रही। शुक्र है कि मैं नाली के पास ही बैठी हुई थी। जिन्होंने पुरानी दिल्ली के मकान देखे हुए हैं, वो समझ सकते हैं।

रसोईघर ज्यादा बड़ा नहीं था। एक ही कमरे में बैठक, शयन कक्ष, स्नानागार रसोईघर... सब कुछ। उसी में 4×6 मैं रसोई। पीछे की तरफ बर्तन रखने के लिए अलमारी, दाएं हाथ की तरफ छोटे- छोटे पत्थर लगाकर एक अलमारी बनाई हुई थी और सामने के पत्थर पर बड़े बर्तन रखने के लिए, पत्थर के नीचे भी पानी भरने के लिये बड़ा सा पीतल का टब। छोटी सी जगह में खाना पकाना पड़ता था। खाना बनाकर हम सब वहीं बैठे हुए खाना खा रहे थे। बुआ सास की पुत्रवधू भी आई हुई थीं। वह हर तीसरे चौथे दिन आ ही जाती थीं और खाना खाकर ही जाती थीं। यह हमारे घर का रिवाज था। मेरा देवर बोला भाभी जी सेवईयाँ बना लो। मैं बोली कि मैं कोई सेवईयाँ नहीं बना रही। सास को आवाज सुनाई दी। वो छत पर बैठी थीं। गर्मियों के दिन थे। बोलीं, बना ले। यदि पहला लड़का हो गया तो फिर सारी उम्र सेवईयाँ नहीं खा पाएगी। मैंने कहा चाहे सारी उम्र ना खा पाऊँ, पर मैं सेवईयाँ नहीं बना रही। वैसे भी उस दिन भी 20 लोगों का खाना बनाया था। थक कर चूर हो चुकी थी। सास ने सोचा कि आज तक इसने किसी काम को मना नहीं किया, जरूर कोई बात है। वो मेरे पास आईं और पूछा कि तबीयत तो ठीक है ना। मैंने उनके कान में कहा कि मेरा तो पेशाब ही नहीं रुक रहा। तब उन्होंने सबको भगाया। कहा कि सब यहाँ से उठो और इसे बरतन साफ करने दो। उनकी आदत थी जो मैंने हमेशा देखा कि वो अपनी बहुओं को बिना कुछ बोले चुपचाप हॉस्पिटल लेकर जाती थीं। उन्होंने पहले से ही जचगी के लिये जो बैग तैयार करके रखा

था, उसमें से अपने सूती साड़ी निकाली और मुझसे कहा कि इसे नीचे लगा ले। उसके बाद बिना किसी को कुछ बताए मुझे हॉस्पिटल लेकर गईं।

मुश्किल उनके लिए भी थी। उधर पुत्री का विवाह सर पर था और इधर मैं हॉस्पिटल में। षष्ठी पूजन के बाद सूतक दूर करने के लिये घर की सफेदी की गई। इतना पैसा नहीं था कि बाहर से मजदूर बुलाते। सबने मिलकर यह काम पूरा किया। दसवें दिन हवन कर दिया। जो रिश्तेदार बाहर से हवन में आए थे, वे हमारे घर ही रुक गए। सफेदियाँ होने की वजह से न पहले आराम मिला और न ही बाद में।

9 अप्रैल को मेरी बेटी पैदा हुई थी और 25 अप्रैल को मेरी ननद की शादी थी। आराम मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। लेटने के लिए भी छोटा सा खटोला था जिस पर पैर भी पूरे नहीं आते थे। मैं और मेरी बेटी दोनों उस छोटे से खटोले पर लेटते थे। पैरों में पैताना चुभता रहता था। हवन के बाद तो घर के काम ही करने शुरू कर दिए थे।

ननद का विवाह सकुशल संपन्न हो गया। घर के पास ही धर्मशाला ली थी। वहीं चले गए थे। मैं मैले कपड़े साथ साथ घर भिजवाती रहती थी जिससे कि धर्मशाला में ढेर ना लगे। जो कपड़े पहने हुए थे, उनके अलावा सभी कपड़े रात को दो बजे ही घर भिजवा दिये थे। ननद के विदा होते ही मैं और मौसी सास तो घर वापस आ गईं क्योंकि सुबह पानी भरना भी जरूरी था। मेरी सास मेरी बुआ सास पति और मेरे देवर धर्मशाला में ही रुके हुए थे। सबकी विदाई करनी थी। ननद की विदा होने के कुछ देर बाद धर्मशाला में गुंडे घुस आए। वो तो शायद आभूषण चुराने के इरादे से आए होंगे लेकिन शुक्र है कि हम लोग पहले ही आ गए थे। हो सकता है उन लोगों ने शादी में देखा हो कि मैंने 12 तोले की सोने की तगड़ी पहनी हुई थी जो मुझे सगाई में चढ़ाई गई थी।

यह तो बाद में जब तीन घण्टे बाद सब घर आए तो पता लगा कि सबको बहुत पीटा। मेरी बुआ सास ने डटकर मुकाबला किया। मैंने तो घर आते ही बर्तनों का ढेर माँझा, पानी भरा, पन्द्रह लोगों के कपड़े डंडे से कूट-कूट कर धोए। फिर खाना बनाने की तैयारी शुरू की। मौसी सास बैठी बैठी देखती रहीं। एक बार भी यह नहीं कहा कि बैठे-बैठे खाना मैं बना दूँगी। अभी तेरा कच्चा शरीर है। जचगी को दिन ही कितने हुए हैं। सब्जियां तक मैंने काटीं, और सबके लिये खाना बनाया। जब यह लोग सारा काम निपटवाकर धर्मशाला से वापस आए तो सब टूटे-फूटे थे।

--00--

क्या-क्या न सहे हमने सितम

यह पहले से ही तय था की मेरे पति मुझे मेरे मायके पग फेरे के लिए लेकर जाएंगे और हम एक घंटा रुक कर वापस आ जाएंगे। लेने के लिए मेरा भाई आया था। आकर देखा कि सब घायल थे। जाकर माँ को बताया। माँ सबको देखने आईं। मैं उस समय खड़ी हुई धूप में कपड़ों को अंदर बाहर कर रही थी। पन्द्रह दिन की जच्चा को यह सब करते देखकर माँ ने कहा कुछ नहीं लेकिन अंदर से उनको दुख हुआ। यही सोच खाए जा रही थी कि ऐसे समय आराम नहीं मिल रहा तो बेटी का शरीर सारी उम्र के लिए खराब हो जाएगा लेकिन कुछ कह नहीं सकती थीं। उन दिनों मौसी सास का लड़का हमारे घर ही रहता था। पग फेरे के लिए मेरा भाई लेने आया क्योंकि मेरा रस्म निभानी बहुत जरूरी थी। मौसी सास का लड़का मुझे लेने गया और इस तरह पगफेरे की रस्म पूरी हुई।

डेढ़ साल बाद छोटी बिटिया हुई। तब चाचा ससुर बहुत बीमार थे। जिस दिन बेटी हुई, उसके छह दिन बाद मेरी छोटी बहन की शादी थी। सारे भाई मेरे मायके में शादी के इन्तजाम में लगे हुए थे। सासू माँ के अस्पताल में चाचा ससुर के पास भी चक्कर लगते रहते थे। मेरा ध्यान कौन रखता? मेरे विवाह के बाद से ही दोनों ननदों का यह हाल था कि वो एक गिलास पानी भी अपने आप लेकर नहीं पीती थीं। वह भी उन्हें बैठे-बैठे देना पड़ता था। पानी पीने के बाद ग्लास भी उनके हाथ से पकड़ना पड़ता था। हवन से पहले रसोई में हाथ नहीं लगा सकते थे। उस जमाने में जच्चा के बर्तन अलग दे दिए जाते थे, जो उसे खुद ही साफ करने पड़ते थे। जच्चा को अछूत समझा जाता था। उन बर्तनों को धोने के लिए जब ननद से पानी डालने के लिये कहती थी तो सुनने को मिलता था कि बाप के घर से नौकर क्यों नहीं ले आतीं। पता नहीं हमारी माँ ने तुम्हें सर पर इतना क्यों चढ़ा रखा है। दुनिया की बहुएँ छठी बाद से ही सारा काम शुरू कर देती हैं। यह हाल तो तब था जबकि मैं अपने, पति व दोनों बच्चियों के कपड़े खुद धोती थी। हालाँकि सास मना करती थीं कि अभी शरीर कच्चा है। अभी कपड़े मत धो। लेकिन ननद के ताने दिमाग में घुसे थे। मैंने तो अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद भी घर में आकर सास के मना करने के बावजूद भी सारे कपड़े खुद धोए। हवन 10 दिन बाद करवा दिया गया क्योंकि भरोसा नहीं था कि चाचा ससुर बचेंगे या नहीं और हवन के बाद मेरे भाई के साथ मुझे मायके भेज दिया। अगले दिन

ही चाचा ससुर का देहांत हो गया। मुझे मायके से लिवाने के लिए भेजा गया। कहा गया कि आकर ससुर के पैर पूजने हैं। माँ मुझे श्मशान में लेकर नहीं जाना चाहती थीं किन्तु मजबूर होकर ले जाना पड़ा क्योंकि मेरी सास ने कहा था कि हमारे यहाँ कुनबे की सारी बहुएँ पैर पूजती हैं। आखिरकार मजबूरन श्मशान भूमि में जाकर उनके पैर पूजने पड़े।

बेटी के पैदा होने के ढाई माह बाद देवर की शादी थी। घर में मैं ही सबसे बड़ी थी। कभी इधर से आवाज लगे तो कभी उधर से। सारा दिन एक टांग पर फिरकी की तरह नाचना पड़ता था, जिसका नतीजा यह हुआ कि मुझे इस कदर रक्तस्राव शुरू हुआ कि बंद होने का नाम ही नहीं ले रहा था। हॉस्पिटल में दिखाया तो उन्होंने एक छोटा सा ऑपरेशन करने के लिए कहा। लेकिन ऑपरेशन नहीं हो पाया क्योंकि बड़ी बेटी को पक्षाघात हो गया।

--00--

क्या-क्या न सहे हमने सितम

घर में कोई नहीं समझ पाया। सबने सोचा कि शायद बुखार के कारण कमजोरी हो गई है। उस जमाने में पिता अपने बच्चों को गोदी में नहीं ले सकता था। प्यार नहीं कर सकता था। पति तो वैसे ही पार्ट-टाईम करने के लिए सुबह-सुबह घर से निकल जाते थे। बासौड़ा पूजने के फौरन बाद मैं उसी दिन अस्पताल में दाखिल हो गई थी। माँ मुझे अस्पताल में देखने आईं तो उन्होंने अपने दामाद से सबका हालचाल पूछा। इन्होंने कहा कि सब ठीक है बस बड़की को बुखार हो गया है तो उससे बहुत कमजोरी आ गई है। चल नहीं पा रही। माँ ने कहा कि मुझे घर ले चलो। मुझे उससे मिलना है। घर जाकर जब अपनी नातिन को अपनी तरफ बुलाने के लिए हाथ बढ़ाया तो उसने उठने की कोशिश की, लेकिन गिर पड़ी। मां समझ तो गईं कि क्या बीमारी है क्योंकि मेरी बड़ी बहन को भी पोलियो हुआ था। उस समय मेरी बहन भी बहुत छोटी थी। माँ ने अपनी समझदारी से मेरी बहन को घर के सब काम सिखाए। घर के कामों के अलावा सिलाई, कढ़ाई, बुनाई सब कुछ। जब उसका विवाह होना था तो ससुराल पक्ष को स्पष्ट बता दिया था कि बचपन में इसे पोलियो हुआ था लेकिन घर के सारे काम कर लेती है। आप चाहो तो करवा कर देख सकते हो। मेरी बहन ने उनके सामने ही सब्जी काटी, खाना बनाया। एक पैण्ट काटी और पैर की मशीन पर उसको सिल कर भी दिखाया। मां ने यह सब कुछ इसलिए किया ताकि बाद में ससुराल वाले यह न कहें कि उनके साथ धोखा

किया गया है। मां ने इनसे कहा इसे एक बार अस्पताल में दिखा दो। सास ने कहा कि बुखार ही तो है। दवाई देंगे तो उतर जाएगा। पति मेरी मां को बहुत समझदार मानते थे क्योंकि मेरी बहन के बारे में मेरे जीजा जी ने उन्हें सब कुछ बताया हुआ था। उन दिनों जयप्रकाश नारायण हॉस्पिटल में ही नौकरी करते थे। उन्होंने बेटी को हॉस्पिटल में दिखाया। तब पता लगा कि उसे पक्षाघात हुआ है।

सुनकर बड़ा आघात लगा। मेरी वो बेटी 9 महीने की थी वो बोलने लगी थी। चलने लगी थी। बेहद बतियाती थी। सबकी बहुत लाडली थी। इतनी प्यारी बातें करती थी कि सब वारी वारी जाते थे। लकड़ी की सीढ़ियों पर दिन में न जाने कितने चक्कर लगाती थी। एक छत पर चढ़ कर छह इंच चौड़ी मुंडेर पर चलकर दूसरे कमरे की छत तक आती थी। उधर की छत पर भी लकडी की सीढ़ी थी। उससे नीचे उतरती थी। हम दम साधे नीचे खड़े उसे ताकते रहते थे कि गिर पड़े तो उसे थाम लें। एक तरफ की सीढ़ी से चढ़ना, वहाँ से छह इंच चौड़ी मुंडेर पर चलते हुए दूसरी छत तक जाना रोज का कार्यक्रम था।

पौने दो साल की उम्र में तो देवर की शादी में पूरे पड़ौस में बुलावा दे कर आई थी। सबसे कहकर आई थी, "मेरे ना चाचा की शादी है और मैं गुलावा देने आई हूँ। देखना बुढ़ढियाँ बुढ़ढियाँ मत आ जाना। चाची को साथ में लेकर आना।" बुलावा शब्द बोलना नहीं आता था। सबने बाद में बताया कि तेरी छोरी किस तरह बुलावा देने आई थी। कह रही थी कि चाची को भी लाना, इसलिए बहू को लेकर आए हैं। वही बेटी अब बिस्तर में इस तरह पड़ी थी कि अपने आप से करवट भी नहीं ले सकती थी। डॉक्टर ने कह दिया कि इसे कम से कम 20 घंटे सुलाना है। अच्छी खुराक देनी है। न तो मेरे ससुराल में इतनी जगह थी कि वह 20 घंटे सो सके और न ही अच्छी खुराक देना संभव था। सारा दिन तो लोगों की आवाजाही बनी रहती थी। मेरे ननदोई हर हफ्ते आते थे और 3 दिन रुकते थे। तीनों दिन मेरे दोनों छोटे देवरों को पिक्चर दिखा कर लाते थे। जाने से पहले खाना खाकर जाते थे और रात को 1:00 बजे फिर उनके लिए खाना बनाना पड़ता था तो बेटी को कहां से आराम मिलता।

--00--

क्या-क्या न सहे हमने सितम

माँ ने डरते-डरते मेरी सास से कहा कि यदि आप बुरा न मानें तो मैं रानी को अपने साथ ले जाऊँ? डॉक्टर ने बच्ची को 20 घंटे सोने के लिए कहा था। शुक्र है कि सासु माँ ने मां की बात मान ली। इसलिए मान ली कि पति सास के कुछ बोलने से पहले ही हाँ कर चुके थे। दोनों बेटियों को लेकर मैं माँ के घर आ गई। एलोपैथिक इलाज के साथ-साथ दूसरी पैथियों का इलाज भी चलता रहा। किसी ने कहा कि इसको टब में बिठाकर कूल्हे तक की सिकाई करो। बड़ी बहन की सास ने एक तेल बना कर दिया और कहा कि इसकी नीचे से ऊपर मालिश करनी है। मुझे यह तमगा नहीं लेना था कि कौन सी पैथी से बच्ची ठीक हुई। अपनी माँ पर भरोसा था। जो माँ पोलियो जैसी बीमारी को हरा सकती है, वह माँ पक्षाघात जैसी बीमारी को भी हरा सकती है, इसलिए उन पर पूरा विश्वास था।

कटि स्नान कराने के लिए 5 फुट लंबा प्लास्टिक का टब मंगवाया गया। बच्ची तो अपने आप से करवट तक नहीं ले पाती थी। बेडरूम में ही टब रखकर उसमें उसको कटि स्नान कराते थे। एक व्यक्ति उसकी कमर पर सहारा देकर बैठता था। बेड पर एक धुली हुई बड़ी चादर पहले से ही रख लेते थे। सिकाई के पश्चात दो लोग बिटिया को उठाते थे और बड़ी चादर में लपेट कर पोंछते थे। फिर कपड़े पहनाते थे। उसके बाद भीगे बादाम खिलाने के साथ ही दूध देते थे। फिर तो वो खर्राटे भर कर सोती थी।

ससुराल से बहुत लोग मिलने के लिए आते थे। माँ उन्हें बैठक में बैठाती थीं और विनयपूर्वक कह देती थीं कि बच्ची को आवाज मत लगाना। केवल देख लेना। मेरी सबसे छोटी बहन और माँ सारा दिन मेहमानों की आवभगत में लगी रहती थीं।मेरी छोटी बेटी को भी संभालती थी।

रात को उसके लिए माँ की समधिन के बनाए तेल की नीचे से ऊपर हल्के हाथ से मालिश करते थे। उसके बाद फिर वह सारी रात घोड़े बेचकर सोती थी। 3 महीने मैं मायके में रही। शुक्र है थोड़ा सा मुझे भी पौष्टिक आहार खाने को मिल गया और मेरी दोनों बच्चियों को भी। क्योंकि मेरे मायके में बीमार की सेवा की जाती है जबकि ससुराल में इसका एकदम उल्टा था। जब डॉ ने अस्पताल में यह कहा था कि बच्ची को दूध पर्याप्त मात्रा में देना और पौष्टिक आहार देना तब सास ने माँ के सामने यही कहा था कि मुझे ऐसी दुराचारी बिल्कुल अच्छी नहीं लगती कि बीमार के लिए अलग से बनाया जाए।

बने तो सबके लिए बने। हमारे **ये** (मेरे श्वसुर) तो मरते मर गए लेकिन मैंने कभी उनके लिए पीलिया होने पर भी अलग से कुछ नहीं बनाया। यह बात उन्होंने अस्पताल में पति के सामने कही थी, तभी पति ने मुझे मायके भेजने का निर्णय लिया था।

दो महीने बाद मेरी बेटी ने फिर से चलना सीखना शुरू किया। पहले दिन खड़ी हुई तो हम सब खुशी के मारे रोने लगे। यह सप्ताह बाद एक कदम चलने लगी। दूसरे सप्ताह 2-3 कदम चलना शुरू किया। चारपाई का सहारा लेकर चलती थी। तीन सप्ताह बाद जब चारपाई का सहारा लेकर चारपाई का पूरा एक चक्कर लगाया तो हम खुशी के मारे कितना रोए, बता नहीं सकते। माँ ने पूरे पड़ौस में लड्डू बाँटे।

जिसने सिकाई करने के लिए बताया था, उसने कहा था कि कम से कम एक साल तक सिकाई करनी पड़ेगी। दो-तीन साल तेल की मालिश भी करते रहना। तीन माह बाद मैं ससुराल आ गई थी। खुराक तो क्या खाक मिलनी थी, यह मुझे पहले ही मालूम था इसलिए उसका क्या शिकवा करना। बस मैंने एक नियम यह जरूर बना लिया था कि शाम को खाना बनाने के बाद (जो 5:30 बजे तक बनाना होता था) मैं अंगीठी के ऊपर पानी गर्म करने रख देती थी। टब को सवेरे ही भर लेती थी। शाम को बेटी की सिकाई करती थी। उसके बाद तेल से उसकी मालिश। उस चक्कर में एक दिन सास के पैरों की मालिश नहीं कर पाई। ननद से सुनने को मिल गया, "बेटी की मालिश करने का समय है। सास की मालिश करने का समय नहीं है। पता भी है कि उनके पैरों में कितना दर्द रहता है।

बड़ी ननद ज्यादातर मायके में ही रहती थीं। गर्भधारण के पश्चात मायके में आ जाते थीं। वो आती थीं तो दिल्ली में रहने वाले उनकी ससुराल के लोग भी मिलने आते रहते थे। उन सबकी आवभगत करनी पड़ती थी लेकिन मैंने बेटी की सिकाई करने का नियम नहीं छोड़ा। उसके लिए ताने भी बहुत सुने लेकिन मैंने उनकी कोई परवाह नहीं की क्योंकि जानती थी यदि बेटी ठीक न हुई तो जीवन भर का रोना है। अभी तो कुछ दिन का रोना है। यदि ये ठीक न हुई तो किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। फर्क पड़ेगा तो सिर्फ मुझे और मेरे पति को।

--00--

क्या-क्या न सहे हमने सितम

मेरी दोनों ननदों को ही मेरी तारीफ़ से बहुत जलन होती थी। छोटी ननद के लिये मैंने लड़का बताया और वहीं विवाह हुआ। बड़ी ननद को यह बात बड़ी नागवार गुजरी। ताने मारती थीं कि वहाँ नौकरी करने जाती हो या इन कामों के लिये जाती हो? अब आप कहेंगे कि बड़ी ननद का तो विवाह हो चुका था। हाँ, विवाह हो चुका था किंतु उनका अधिक समय ससुराल में न बीतकर मायके में ही बीता। गर्भधारण होने के बाद वो मायके में आ जाती थी। 4 बार गर्भपात हुआ फिर उसके बाद चार बच्चे पैदा हुए। हिसाब से औसतन 6 साल मायके में रहीं।काम कुछ नहीं करना और बैठे-बैठे हुकुम चलाना।

इनका तीसरा भाई विवाह के लायक हो चुका था लेकिन कमाने के बारे में कभी नहीं सोचा। मटरगश्ती में समय बिताता था। छैला बना घूमता था। सास तो उसके लिये कहती थीं

मेरे लला के कौन-कौन यार

धुने जुलाहे और मनिहार

उससे आगे पढ़ने के लिये कितना कहा लेकिन मजाल है कि उसके कानों पर जूँ तक रेंगी हो।

सास का एक देवर कुँवारा था। वो चाचा श्वसुर हमारे यहाँ ही रहते थे। सास को यह डर था कि उनके देवर की तरह उनका बेटा भी कहीं कुँवारा न रह जाए। पति और बड़े देवर से कहने की तो हिम्मत नहीं होती थी, रोज मुझसे ही कहती थीं कि मेरी आँख मिंच गईं तो इसकी शादी कौन करेगा? शायद उनका अनुभव बोल रहा था। बार-बार मेरे यह कहने पर भी कि पहले कुछ कमाने तो दो। पत्नी को कहाँ से खिलायेंगे। हर बार उनका यही जवाब होता था कि जहाँ इतने लोग खा रहे हैं वहाँ एक अकेली के आने से कितना फ़र्क पड़ जाएगा।

संयोग से अस्पताल में एक व्यक्ति ने मुझसे अपने साले की लड़की के लिये कोई लड़का बताने के लिये कहा। मैंने लड़की की डिटेल पूछीं। लड़की मेरे देवर से दो साल छोटी थी। मैंने कहा कि मेरी निगाह में एक लड़का है लेकिन उसकी नौकरी छूट चुकी है। आजकल कोई काम नहीं करता। उन्होंने अपने व्यापार में लाभ का 1% देने का आश्वासन दिया।

घर में आकर सास को यह बात बताई। ननद ने बोलना शुरू किया तो चुप ही नहीं हुईं। "पता नहीं कि ये नौकरी करने जाती हैं या रिश्ते कराने? हमारी माँ ने कुछ ज्यादा ही शह दे रखी है। लड़की पसन्द करनी है तो यही तय करेंगी। लड़का पसन्द करना है तो भी इन्हीं का फैसला माना जायेगा।" बात आई गई हो गई। ननद की यह बात दिल को लग गई। वैसे तो उनके अत्याचारों की फहरिस्त बहुत लम्बी है जिन्हें मैंने यह सोचकर भुला दिया कि जिसके पास जो है, वह वही तो देगा। यहाँ तक कि एक बार घर में छह मेहमान आए हुए थे। मेरी देवरानी ने खाना बनाया और मैंने सबको खिलाया। सारे झूठे बर्तन साफ किये। एक मन पक्के कोयले तोड़े। इतनी देर में और झूठे बर्तन भी इकट्ठा हो गये थे। अचानक बेटा जीने में गिर गया। मैं उसे गोद में लेकर चुप कराने लगी। एकदम छत से उठकर रसोई में आईं। बर्तन साफ करने बैठीं। छोटे भाई को आवाज लगाई, "चल रे गप्पू! आकर बर्तन धुलवा। "मैंने बर्तन साफ करने से रोकने की कोशिश की तो भड़ककर बोलीं, तू पहले नंदलाल खिला। "पति घर में ही थे। मैंने उनसे कहा कि इन्हें उठाओ। अच्छा लगता है कि हमारे होते हुए ये बर्तन साफ करे?

"कक्कू! तू यहाँ से उठ। ये दोनों अपने आप रोज करती हैं ना। क्या तुझसे आज तक कोई काम करवाया है?"

अब तो भाई से भी तू तड़ाक पर आ गईं। छाती पीट पीटकर रोना शुरू कर दिया। "हाँ हाँ, मैं यहाँ पड़ी हुई रोटियाँ तोड़ रही हूँ। बीबी कमाती है तो उसकी हिमायत ली जा रही है। पहले उससे यह पूछ कि उसे आए हुए एक घण्टा हो चुका है। अब तक क्या किया?"

"तुझे इससे क्या मतलब? तुझसे तो कभी कोई काम नहीं करवाया ना।" फिर तो धाराप्रवाह चालू हो गईं। आखिर झख मारकर पति ने मुझे दो तीन झापड़ रसीद किये। ननदोई सामने से दौड़ कर आए और इनका हाथ पकड़ा। कहा कि ये क्या कर रहे हो। मेरे मुँह से निकल गया, "जीजा जी! मारने दो। इन दोनों बहन भाइयों को तभी ठंडक पड़ेगी।" सारे मेहमान चले गये। ननदोई इन्हें पान खिलाने के लिये ले गये। सास उस समय घर में नहीं थीं। उसके बाद तो घर में जो तूफान मचाया, वो कल्पना से बाहर है। तब भी उनकी उस बेवकूफी को मैंने माफ़ कर दिया। उनके इस व्यवहार से मेरी इज्जत में कोई कमी नहीं आई, उनकी इज्जत सबकी निगाहों में जरूर कम हो गई। देवर के लिये जब लड़की पसन्द करने गये तो मैं बहुत कहने पर भी नहीं गई क्योंकि सभी देवर यही कहते थे कि पहली और आखिरी पसन्द आपकी होगी।

अच्छा है कि मैं नहीं गई। मेरी उस देवरानी ने मेरे साथ कभी अच्छा सुलूक नहीं किया। अब उसे अपनी गल्तियाँ समझ आती हैं और पूरी इज्जत करती है। बड़ा देवर उसी दिन गुलाबीबाग किराए के मकान में चला गया था क्योंकि उस घर में इतनी जगह ही नहीं थी। या हम अलग होते या वह होता। फैसला हुआ कि यह अकेला कमाता है। पार्टटाइम काम भी नहीं करता। अपनी तनख्वाह में अपने परिवार को ही पाल सकता है। ये दो कमाते हैं और पार्टटाइम काम से भी अच्छी आमदनी हो जाती है। इसलिये ये यहीं रहेंगे।

--00--

(1) जिन्दगी के रंग कई रे

2 मार्च 2009 का वह दुखद दिन... सुबह 3:30 बजे फोन की घंटी बजी। सुनते ही लगा कि घर में किसी बड़े बुजुर्ग की मृत्यु हो गई है, उसका फोन आया है। तब घर में बुजुर्गों में केवल तीन ही बचे थे जिनकी मृत्यु प्रतीक्षा कर रही थी। जल्दी से अपनी दवाई व एक बिस्किट का पैकेट और पानी की बोतल पर्स में रखीं ताकि वापसी में दवाई खा सकूँ। पता था कि इतना समय हो जाएगा कि दवाओं का टाइम हो जाएगा। दवा समय से नहीं खाती हूँ तो फिट पड़ जाता है क्योंकि दवा का असर बारह घंटे बाद खत्म हो जाता है। थायराईड की दवाई खाकर ब्रश करना शुरू किया ही था कि पतिदेव फोन सुनने के बाद बोले- "विकास को आवाज़ लगाओ"।

"रहने दो। उसे क्यों परेशान करना। हम खुद चले जाएंगे।" इतनी देर में इन्होंने मेरे देवर को फोन किया। जब मैंने आवाज सुनी, रोहित जी गए... एकदम मेरे हाथ से ब्रश छूटा और मैं बुक्का फाड़कर रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर एकदम बच्चों की नींद खुल गई। बहू बेटा और पोता दौड़ते हुए ऊपर से आए और घबराते हुए पूछा," क्या हुआ पापा?"

"रोहित जी गुजर गए।" पता नहीं कैसे इन्होंने संयम रखकर कहा। मैं तो एकदम संज्ञाशून्य हो गई थी। जिस फोन से इनको फोन आया था, उसी पर फोन लगाकर पूछा कि फ्लाइट कितने बजे की है। बेटी के देवर ने फोन किया था। उसी ने बताया कि दिल्ली से 5:30 बजे की फ्लाइट है। एक देवर को फोन किया कि तू फटाफट एयरपोर्ट जा और जाकर जितने टिकट मिलें उतनी टिकटों का इंतजाम कर। शुक्र है उस समय सभी के घर में पैसे रखे हुए थे, क्योंकि मेरे सबसे छोटे देवर की 4 मार्च को शादी की 25 वीं वर्षगांठ थी। बैंकट हॉल बुक करवाया हुआ था। ढाई सौ कार्ड बँट चुके थे। सबको देने

के लिए रिटर्न गिफ्ट आ चुके थे, किंतु उन सब बातों की परवाह न करके मेरी देवरानी भी एयरपोर्ट पर उपस्थित थी। देवर की टिकट बुक हो गई थी। वह हमारे साथ गया था। रास्ते में से ही उसने अपने कुछ दोस्तों को फोन किया और रोते हुए बताया कि आगे सबको बता देना कि मेरे दामाद की मौत हो गई है और अब फंक्शन नहीं होगा। वह चाहता तो फंक्शन हमारे बिना भी कर सकता था, क्योंकि बैंकट हॉल बुक था और सारा सामान आ चुका था लेकिन मेरे घर में रिश्तों की अहमियत को समझा जाता है और मुझे और मेरे पति को मेरे सभी माता-पिता का दर्जा देते हैं और सम्मान करते हैं। उस दिन सही मायनों में मैंने समझा कि रिश्तों की अहमियत क्या होती है। रिश्ते वही जो दुःख के समय आपके साथ खड़े हैं।

मुझे तो होश ही नहीं था। बहू ने जल्दी-जल्दी इनके मेरे, और बेटे के और श्वसुर के कपड़े रखे और हम रोते कलपते एयरपोर्ट के लिए रवाना हो गए। सुबह एयरपोर्ट पर हम 14 लोग इकट्ठे थे। टिकट केवल चार लोगों की मिल पाई जिसमें मेरी टिकट नहीं थी। मेरा बेटा वहीं पर रोने लगा। बोला "वहाँ मेरा जीजा मर गया, यहाँ मेरी माँ मर जाएगी। कोई सी भी टिकट हो, किसी भी क्लास की हो, मगर माँ की टिकट चाहिए। इतनी देर मेरा देवर मेरी टिकट कराता रहा और बाकी के तीन लोगों ने अपनी चेकिंग कराई। मेरा भी सामान चेक करवा लिया था। मैं तो फ्लाइट शुरू होने से दो मिनट पहले फ्लाइट में चढ़ी। हमारी हालत देखकर और जिस तरह से हम रो रहे थे तो एयरपोर्ट वालों ने इतनी सहानुभूति अवश्य दिखाई कि मेरी चैकिंग कर ली थी। मैं बोर्डिंग गेट के पास खड़ी भी हो गई थी और मेरा देवर दौड़कर मेरी टिकट दे गया था। फ्लाइट उड़ने में केवल दो मिनट बाकी थे, जब मैंने भागकर फ्लाइट पकड़ी। सारा रास्ता कैसे पार किया... मैं ही जानती हूँ। एक एक पल एक एक युग के समान बीत रहा था।

दामाद की उम्र केवल 39 वर्ष की थी और मेरी पुत्री मात्र 37 वर्ष की। दो छोटे-छोटे बच्चे। एक का तीसरी कक्षा का पेपर था और एक का प्रथम कक्षा का, जो दे भी नहीं पाए क्योंकि मृत्यु ही इतनी आकस्मिक थी। कौन सोच सकता है कि रात को दोनों पति-पत्नी आराम से बैठकर मूवी देख रहे थे। बस हुआ यह कि नॉन वेज चाऊमीन खा ली और वह भी वोदका के साथ। उसके बाद केवल दो उल्टी और दो बार दस्त हुए। हालाँकि इतने मजबूत दिल के थे कि 104 बुखार में भी कभी शोर नहीं मचाते थे। उस दिन न जाने क्या हुआ कि मेरी बेटी से बोले- "अमित को बुला। मुझे हॉस्पिटल लेकर जाएगा"

काश! कि वह अपने बड़े भाई या पिताजी के लिए बोल देते क्योंकि देवर को बिल्कुल भी समझ नहीं थी। इतनी बीमारी में भी यह गाड़ी स्वयं चलाकर ले गग थे। हॉस्पिटल में डॉक्टर ने मॉनिटरिंग मशीन पर रखा तो वहाँ एक बार अटैक आया। पता लगा कि एक अटैक घर में ही आ चुका था। फिर एक अटैक आया और सदा के लिए शांत हो गए। डॉक्टर ने मृत घोषित कर दिया। बेटी के जेठ ने घर में आकर कहा- "पूनम! रोहित नहीं रहा।"

"नहीं रहा? क्या मतलब भैया?" "मेरा मतलब इस संसार से विदा हो गया," जेठ ने रोते हुए कहा। "नहीं! नहीं! ऐसा कैसे हो सकता है? सिर्फ दो उल्टी और दो दस्त ही तो हुए थे। अच्छे भले तो बैठे हुए थे। मैं कैसे मान लूँ?"

"अपने कपड़े बदल और मेरे साथ चल।" जल्दी-जल्दी बेटी ने गाउन बदला। सूट पहना और जेठ के साथ अपने सास-ससुर के घर गई। वहीं पर उनकी मृत देह को लाया जाना था। उसे तो यही समझ नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो गया? एक ही पल में उसकी तो दुनिया ही उजड़ गई थी। हम जब वहाँ पहुँचे तो वह बिल्कुल संज्ञाशून्य सी बैठी हुई थी। मुझे भी कुछ समझ नहीं आ रहा था। बस उसके गले से लिपट कर रोए जा रही थी।

दाह संस्कार के बाद वहाँ से वापस आना मजबूरी थी। उसकी ससुराल भिलाई में है, और हम दिल्ली में रहते हैं। तेरहवीं वाले दिन हम 14 लोग भिलाई गए थे। दो साल तक तो मेरा रो-रो कर इतना बुरा हाल था कि मैं बिल्कुल पागल जैसी हो गई थी। मेरी हालत देखते हुए सबने यह निर्णय लिया था कि हर महीने पर मुझे जाने देते थे।

मेरी बेटी सास-ससुर से अलग रहती थी, क्योंकि मेरे दामाद का कारोबार चौपट हो चुका था। दस हजार गज की फैक्ट्री व हजार गज की कोठी भी बिक गई थी। माता पिता किराए के घर में रहते थे। जेठ ने किसी और कंपनी में नौकरी कर ली थी और दामाद ने रायपुर में किसी कंपनी में नौकरी करनी शुरू कर दी थी। एक बार कोई अलग हो जाता है तो घर में इतना सामान हो जाता है कि साथ में रहना मुमकिन नहीं हो पाता।

दो वर्ष रायपुर में नौकरी करने के पश्चात उसी कंपनी में भिलाई में नौकरी करनी शुरू की। माता पिता के घर के पास ही मकान लिया हालांकि उनकी मृत्यु के उपरांत उसी लाइन में ही किराए का मकान लिया जिससे की बेटी नौकरी करे तो बच्चों के लिए एक मोरल सपोर्ट रहे। मैं हर महीने जाती थी और 10-15 दिन दिन बेटी के पास रहकर आती थी। वह नौकरी करने जाती थी और मैं बच्चों के

स्कूल से आने के बाद पढ़ाई में बच्चों की मदद करती थी। घर के काम देखती थी। थोड़ा सा बेटी को भी अच्छा लगता था और मेरा भी दिल का कुछ बोझ कम होता था। दोनों एक दूसरे से दुख की बातें करके अपने-अपने मन का बोझ हल्का कर लेती थीं। छोटे बेटे का तो यह हाल था कि वो पापा की फोटो के सामने खड़ा होकर आरती उतारता था और बोलता था 'ओम जय प्यारे पापा। ओम जय प्यारे पापा।' उसके दिमाग में यह बात किसी ने बड़े प्यार से भर दी थी कि पापा एक अस्पताल में गए हैं अपना इलाज करवाने के लिए। अस्पताल में बच्चे नहीं जा सकते और बड़े भी नहीं जा सकते। जब पापा ठीक हो जाएंगे तो अस्पताल वाले अपने आप घर छोड़ जाएंगे। वह इतना छोटा था कि उसे कुछ समझ ही नहीं थी। मुझसे भी यही बातें कहता था- 'नानी चिंता मत करो। रो क्यों रही हो? पापा जब ठीक हो जायेंगे तो अस्पताल वाले पापा को घर छोड़ जायेंगें।' बड़ी मुश्किल से अपने आँसुओं को काबू करना पड़ता था। जिन्दगी अपने रंग दिखा रही थी। दामाद की बरसी के बाद बेटी दिल्ली आई। जब आती है तो घर में सभी उससे मिलने भी चले आते हैं। पति के ही किसी दोस्त ने कहा कि मसूरी में क्यों नहीं देख लेती हो? हमारे ख्वाबों ख्यालों में भी दूर-दूर तक मसूरी नहीं था, लेकिन पति ने सोचा कि जाकर देखने में क्या हर्ज है? घूमना हो जाएगा। हरिद्वार, ऋषिकेश, मसूरी घूमते हुए वापस आ जाएंगे। बेटी का मन भी थोड़ा सा बदल जाएगा। थोड़ी आउटिंग हो जाएगी। वहां सिलेक्शन हो गया तो बहुत अच्छी बात है। नहीं हुआ तो कोई बात नहीं।

हम टैक्सी करके मसूरी गए। स्कूल की डीन ने बेटी का डेढ़ घंटे तक इंटरव्यू लिया। पूरी तरह से संतुष्ट थीं। उसी समय बेटी को कहा कि वह ज्वाइन कर ले, लेकिन उसी समय ज्वाइन करना संभव नहीं था। उसने एक सप्ताह का समय माँगा। हम वापस दिल्ली आए और मैं उसी के साथ फिर भिलाई गई। घर के सारे सामान की पैकिंग की। वहाँ वह नौकरी पर जाती रही और मैं उसके पीछे घर के सामान की पैकिंग करती थी। कितना सामान दान किया... कितना सामान बेचा... डाइनिंग टेबल दामाद का ड्राइवर ले गया। बहुत से कपड़े, बर्तन और खिलौने भी उसे और घर की सहायिका को दिए। कुछ क्रच में दान किये। दामाद को खिलौनों का इतना अधिक शौक था कि पूरी छत खिलौनों से भरी हुई थी। यहाँ तक कि जूते पॉलिश करने के लिए भी इलेक्ट्रिक मशीन थी। घर में एक से एक बड़ी सुविधाएं थीं। बेहिसाब क्रॉकरी... बेहिसाब बर्तन... कितने बांटे। कितने ही बेचे।

जिस फैक्ट्री में दामाद काम करते थे उनके दोस्त की थी। उसने काफी मदद की। हम लोग तो सामान की पैकिंग करके वहाँ से चल पड़े थे। सामान मसूरी

बाद में पहुँचा था। दिल्ली से मैं गई थी जिससे कि उस सामान को बेटी के घर में व्यवस्थित करा सकूं जो उसके अकेले के वश की बात नहीं थी।

आज भी वह घटना याद आती है तो आँखो के आँसू नहीं रुकते। बच्चों को दिखाने के लिए अपने आप को मजबूत बनाना पड़ता है। इस वक्त भी जब मैं यह दास्तान लिख रही हूँ, मेरी आँखों से टपाटप आँसू बह रहे हैं। इस बार तो होली भी दो मार्च की ही थी, लेकिन किसी का दिल दुखी न हो, इसलिए खुद को मजबूत बनाना पड़ता है। यह जिंदगी न जाने क्या- क्या सिखाती है। एक आँख से आँसू बहते हैं तो एक आँख से हँसना पड़ता है। दुनिया का रंगमंच है ना। बहुत कुछ सिखा देता है।

आज केवल एक बात का सुकून है कि मेरी बेटी जहाँ नौकरी करती है, वह बोर्डिंग स्कूल है। स्कूल कैंपस में ही उसको घर मिला हुआ है, जिसका कोई किराया नहीं देना पड़ता। बिजली, पानी, मेंटेनेंस... सभी कुछ मुफ्त है। अच्छा वाला मैस है। किसी की मर्जी है खाना वहाँ खाओ या मर्जी है तो घर में बनाओ। स्कूल की अध्यापिकाओं के बच्चों की मुफ्त पढ़ाई है। मेरी बेटी के दो बच्चे हैं तो दोनों की पाँच लाख रूपये साल की फीस है जो नहीं देनी पड़ती। बड़ा बेटा आजकल बारहवीं कक्षा में है। उसकी ट्यूशन की क्लास भी होती है। स्कूल की अध्यापिकाओं के बच्चों के लिए मुफ्त है। वह भी एक लाख ₹ साल की है, जो बेटी को नहीं देने पड़ते। सुरक्षा इतनी चाक-चौबंद है कि गार्ड मुझे जानता है, इसके बावजूद भी जब मैं जाती हूँ तो मुझे कैंपस के अंदर नहीं जाने देता। अपने कमरे में बैठा लेता है और फोन करके पहले डीन से पूछता है कि पूनम मैडम की मम्मी आई हुई हैं। इनकी एप्लीकेशन आई हुई है क्या? बच्चे भी नवंबर की छुट्टियों में 1 महीने के लिए दिल्ली आते हैं। बच्चे सामान लेकर पहले ही गेट पर आ जाते हैं गार्ड को मालूम है कि हर साल बच्चे नानी के घर जाते हैं, इसके बावजूद भी बच्चों को गेट से बाहर तब तक नहीं निकलने देता जब तक कि मेरी बेटी वहाँ न पहुँच जाए। इसी बात का संतोष है कि मेरी बेटी एक सुरक्षित वातावरण में रह रही है। जो दुख उस पर पड़ा है, वह तो दूर नहीं हो सकता। जिंदगी भर दूर नहीं हो सकता। भुलाया भी नहीं जा सकता। बस इतना संतोष है कि सुरक्षित माहौल में रह रही है। दिल के संतोष के लिए यही काफी है। लेकिन यह संतोष भी कुछ वर्ष ही रहा। अभी भगवान फिर से उसकी परीक्षा लेने के लिये बड़ा कठिन परीक्षा पत्र बना रहा था।

--00--

(2) जिंदगी कैसी है पहेली हाय

मेरी बेटी की और हमारी भगवान न जाने क्यों इतनी परीक्षा ले रहा है। पहले उसके पति को छीना। यह किसी स्त्री और उसके माँ-बाप के लिए कितना दुखद व त्रासद है, यह सभी समझ सकते हैं लेकिन उसके बाद तो भगवान बख्श देता। लेकिन नहीं... अभी तो और परीक्षा देनी बाकी थी। अचानक उसे पता लगा कि उसको एक आँख से नजर नहीं आ रहा। यहाँ तक कि दीवार पर लगी हुई घड़ी भी नजर नहीं आ रही थी। डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टर ने F.A किया और फिर एंजियोग्राफी कराने के लिए कहा। अपने दोनों बच्चों को साथ ले गई थी लेकिन डॉक्टर ने कहा कि एंजियोग्राफी के लिये किसी बड़े का होना जरूरी है। हालाँकि इसका बड़ा बेटा उस समय 16 साल का था। डॉक्टर ने फिर भी मना कर दिया। बेटी ने अपने पापा के पास फोन किया। पिता ने फौरन कहा कि तू टैक्सी लेकर सीधी विकासपुरी आ जा। दिल्ली आई। उसे यहाँ **सैण्टर फॉर साइट** हॉस्पिटल में दिखाया। एंजियोग्राफी हुई। डॉक्टर ने कहा कि आँख में इंजेक्शन लगाना पड़ेगा। एक इंजेक्शन ₹50000 का आएगा। सोचा कि एक बार एम्स में दिखा देते हैं। किसी की सिफारिश से एम्स के सीनियर डॉक्टर को दिखाया। देहरादून के इन्द्रेश हॉस्पिटल का प्रिस्क्रिप्शन भी ले गए थे व एंजियोग्राफी की रिपोर्ट भी ले गए थे। एम्स के डॉक्टर ने बहुत ध्यान से देखा और कहा कि इंजेक्शन तो लगाना ही पड़ेगा। थोड़ी देर बाद पूछा, "आप कहाँ रहते हो?"

"मसूरी"

"मसूरी से आप दिल्ली आना जाना करोगे तो आपको मुश्किल होगी। वैसे भी यहाँ भी आपको इंजेक्शन के पैसे जमा करने पड़ेंगे जो ₹18000 हैं और 15 दिन बाद इंजेक्शन आएगा। जरूरी नहीं है कि एक इंजेक्शन में ही काम हो जाए। हो सकता है तीन चार इंजेक्शन लगाने पड़ें। यदि वहीं आस-पास हॉस्पिटल है तो आप वहीं दिखाएँ। देहरादून में जिस हॉस्पिटल में आपने दिखाया है, उसमें एम्स के पढ़े हुए डॉ आशीष हैं। आप वहाँ इंजेक्शन लगवा सकते हो।"

फिर यही निश्चय किया कि जब यहाँ भी 18 दिन बाद इंजेक्शन लगना है और ₹18000 जमा करने पड़ेंगे... दिल्ली आने जाने में भी बच्चों की और बेटी की बहुत छुट्टियाँ हो जायेंगी। बेहतर है कि देहरादून में ही इंद्रेश हॉस्पिटल में इंजेक्शन लगवा लिया जाए। अगले दिन की ट्रेन की टिकट बुक

करवाई और मैं बेटी के साथ मसूरी गई क्योंकि इन्जैक्शन लगाने के लिये ऑपरेशन थियेटर में ले जाने से पहले किसी बड़े से फार्म पर हस्ताक्षर करवाते हैं, इसलिये मेरा जाना जरूरी था। सीधे मसूरी जाने की बजाय हम पहले देहरादून इंद्रेश हॉस्पिटल पहुँचे। वहाँ डॉक्टर को एंजियोग्राफी की रिपोर्ट व एम्स का ट्रीटमेंट दिखाया। डॉक्टर ने एन्जियोग्राफी के रिपोर्ट के आधार पर इंजेक्शन लिखा। शुक्र है कि बेटी ई.एस.आई के पैनल पर है और वह हॉस्पिटल ई.एस.आई को कवर करता है इसलिए इंजेक्शन के पैसे खुद से खर्च नहीं करने पड़े। वहाँ से हम सीधे माल रोड आए। माल रोड से अंदर 3 किलोमीटर दूर डिस्पेंसरी है। वहाँ पर इंजेक्शन इण्डैण्ट करवाया और उसी टैक्सी से मसूरी पहुँचे। बेटी का घर माल रोड से 4 किलोमीटर दूर है। पूरे दिन की टैक्सी की हुई थी।

जब बेटी पहले इंद्रेश हॉस्पिटल दिखा कर आई थी और डॉक्टर ने एंजियोग्राफी के लिए कहा था, तब स्कूल में सभी ने कहा था कि इंद्रेश हॉस्पिटल एकदम बेकार है। बेहद भीड़ होती है इसलिए बेटी का मन भी पहले बहुत दुविधा में था लेकिन वो एम्स की भीड़ को देख चुकी थी। कंधे से कंधा टकरा रहा था। लग रहा था मानो पूरा हिंदुस्तान एम्स में इकट्ठा हो गया है इसलिए अब उसके मन में कोई दुविधा नहीं थी। मुझसे बोली, **"मम्मी! बेमतलब सभी लोगों के कहने पर मेरे मन में ऐसी भावना भर गई थी कि इन्द्रेश हॉस्पिटल बिल्कुल बेकार है। उसमें कितनी भीड़ होती है। यदि ये लोग दिल्ली के हॉस्पिटल देख लेंगे तो बेहोश ही हो जायेंगे।"**

इन्द्रेश हॉस्पिटल में डॉक्टर और सारा स्टाफ बेहद सहयोग करने वाला था। डॉक्टर ने अपना मोबाइल नंबर तक दे दिया था और बेटी ने दिल्ली से चलने से पहले ही उनसे अपॉइंटमेंट ले लिया था। इससे ज्यादा कोई क्या करेगा। 15 दिन बाद उसका इंजेक्शन आया। उसे रिसीव करने के लिए डिस्पेंसरी जाना था।वहाँ भी एक बार जाने में 600/-रुपये खर्च होते हैं। पहले दिन डिस्पेंसरी जाकर इंजेक्शन लेकर आए और अगले दिन लगवाने के लिए इन्द्रेश हॉस्पिटल गये। 2500/-रुपये में पूरे दिन की टैक्सी करके हॉस्पिटल नौ बजे तक पहुँच गये थे। शाम को डॉक्टर से आग्रह करके छह बजे छुट्टी ले ली थी क्योंकि पहाड़ों पर रात में टैक्सी का चलना बहुत खतरनाक है। खतरनाक खाईयाँ, कहीं एकदम ऊँचाई तो कहीं एकदम ढलान है। रात को जाना खतरे से खाली नहीं है। एक सप्ताह बाद दोबारा दिखाने जाना था। मेरी ब्रेन ट्यूमर की दवाइयाँ खत्म हो गई थीं। दिल्ली वापस आना मेरी मजबूरी थी क्योंकि देहरादून की डिस्पेंसरी में एक दवाई के अलावा अन्य कोई दवाई नहीं मिली

इसलिए जिस दिन बेटी को दिखाना था, उसी दिन की शताब्दी एक्सप्रैस की टिकट बुक करवा ली थी। रेलवे स्टेशन इन्द्रेश हॉस्पिटल से बहुत पास में है। बेटी और नाती स्टेशन पर छोड़ने आए थे। ट्रेन एक घंटा पहले स्टेशन पर लग चुकी थी। अंदर आकर मेरे नाती ने मेरी अटैची ऊपर ऊपर रख दी थी। एक यात्री आया। उसने मुझसे अनुरोध किया कि यदि आप पीछे वाली सीट पर बैठ जाओगी तो हम चारों पास-पास बैठ जाएंगे। मुझे क्या फर्क पड़ना था क्योंकि मैं तो अकेली थी, इसलिए मैं पीछे वाली सीट पर बैठ गई। मैंने तो ध्यान नहीं किया, लेकिन बेटी ने देखा कि वह यात्री अपनी अटैची ऊपर रख रहा था और मैं वहीं नीचे बैठी हुई थी। उसकी अटैची बहुत बड़ी और बहुत भारी थी। जब रखने लगा तो संभाल नहीं पाया और अटैची पटाक से मेरे सिर पर गिरी।एक बड़ी तेज चीख मेरे मुँह से निकली। आँखों के आगे चाँद तारे नाच गये। दोनों हाथों से अपनी खोपड़ी दबा कर मैं कराह रही थी। पता नहीं किसी ने कहाँ से एक पॉलिथीन में बर्फ लेकर मेरे सर पर रखी। खुद उस पॉलिथीन को दबाने लगा/लगी। जिस यात्री ने अटैची रखी थी, बेटी ने उसको बहुत डाँटा। कहा कि आपको अटैची रखनी थी तो कम से कम इनको 2 मिनट के लिए हटने के लिए बोल दिया होता। बेचारा माफी माँगता रहा। मैंने बेटी को हाथ से इशारा करके रोका। बड़ी हिम्मत करके अपनी आवाज निकाली कि बेटा उन्होंने ऐसा जानबूझकर थोड़े ही किया है। मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। हालाँकि मुझे मालूम था कि मुझे बेहद तकलीफ हो रही थी लेकिन बेटी को टेंशन न हो, क्योंकि पहले ही टेंशन की वजह से उसकी आँख बेकार हो चुकी थी। मैं नहीं चाहती थी कि फिर ऐसा हो, इसलिए मैंने बड़ी हिम्मत करके अपनी आवाज को नॉर्मल किया और उसे कहा कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ। फिर वह आसपास के सह यात्रियों को यह बोल कर गई कि मम्मी को फलाँ तकलीफ है। इनका ध्यान रखना। ये इतने बजे दवा खाती हैं। इनको इनकी दवाई खाने का याद दिला देना। बाथरूम जाएँ तो कोई साथ में जाकर बाहर खड़े रहना। सभी सहयात्रियों ने मेरा पूरा ध्यान रखा। बीच-बीच में मुझसे मेरा हालचाल पूछते रहे। बेटी ने दिल्ली में मेरे मना करने के बावजूद बता दिया। वैसे मैं टैक्सी करके घर आती, लेकिन दिल्ली स्टेशन पर ट्रेन रुकने पर मैंने देखा मेरा बेटा ट्रेन के रुकते ही अंदर आया। तब समझ आया कि मेरे मना करने के बावजूद भी बेटी ने उसको फोन कर दिया था। उसके बाद भी बेटी रोज सुबह शाम फोन करके पूछती थी कि तुम्हारी तबीयत कैसी है। कई बार समझाया कि जो होना होता है, वह होकर ही रहता है लेकिन उस यात्री

के प्रति उसका गुस्सा शान्त ही नहीं हो रहा था। अगली बार फिर इंजेक्शन लगना था और मैंने उसके पास जाने के लिए कहा किंतु उसने साफ मना कर दिया। इस बात को दो साल हो गए हैं। हर महीने एक बार दाईं और एक बार बाईं आँख में इंजेक्शन लगता है लेकिन मुझे आने के लिए साफ मना कर देती है। अब तो दोनों आँखों में खून फैल गया है और कुछ भी नजर नहीं आ रहा। डॉक्टर ने ऑपरेशन करने के लिए बोला हुआ है। यह भी कहा है कि ऑपरेशन में कोई कॉम्प्लिकेशन भी हो सकती है। नाती के बोर्ड के एग्जाम हैं, जो 27 मार्च को खत्म होंगे। उसके बाद ऑपरेशन होगा। अब तो देशव्यापी बंद है तो बोर्ड परीक्षा भी स्थगित हो गई है। बेटी मुझे रोजाना फोन करके मना कर देती है कि तुम बिल्कुल मत आना। तुम्हारे आने से मेरी जिम्मेदारी और ज्यादा बढ़ जाएगी। मुझे तुम्हारी चिंता लगी रहेगी। न तुम ठीक रहती हो, ना ही पापा ठीक रहते हैं। मैं स्कूल से किसी को ले जाऊँगी और एक महीने के लिये फुल टाइम मेड लगा लूँगी। अब देखो कैसे क्या होगा? सब भगवान के ऊपर छोड़ दिया है। देखते हैं कि वह अभी कितनी परीक्षाएँ लेगा? उनमें वह हार जायेगी या और अधिक मजबूत होगी। कभी-कभी सोचती हूँ कि भाग्यविधाता से पूछूँ कि जो किसी का बुरा नहीं सोचते, बुरा नहीं करते, ईश्वर उनकी ही इतनी कठिन परीक्षा क्यों लेता है।

--00--

जिन्दगी कैसी है पहेली हाय

जिंदगी भी कितनी विचित्र होती है। कभी रोना चाहते हुए भी रो नहीं पाते और हँसना चाहते हुए हँस नहीं पाते। ऐसा ही कुछ मेरे साथ भी हुआ। मेरी ननद और मेरी बहन... दोनों को प्रसव पीड़ा शुरु हुई। दोनों को जयप्रकाश नारायण हॉस्पिटल में भर्ती किया गया। संयोग से दोनों दो बैड वाले एक ही कमरे में थीं। बहन की ससुराल पक्ष के लोग भी जमा थे और मेरी ननद के ससुराल पक्ष तथा मायके के भी कुछ लोग इकट्ठे थे।

मेरी ननद का पहले चार बार गर्भपात हो चुका था। घर में सास नहीं है और कोई काम करने वाला भी नहीं था इसलिए गर्भावस्था के दिनों मायके में आकर रहना उनकी मजबूरी थी। हर बार चौथे महीने में ही गर्भपात हो जाता था। इस बार नौ माह ठीक से गुजर गये थे। हम सब बड़ी उत्सुकता से किसी शुभ समाचार की उम्मीद कर रहे थे। पहले मेरी बहन की खबर आई कि उसने पुत्र को जन्म दिया है और माँ व बच्चा दोनों स्वस्थ हैं। घर में

प्रथम संतान थी, अतः सभी बड़े खुश होकर एक दूसरे को मुबारकबाद दे रहे थे। सभी बड़ी उत्कंठा से मेरी ननद के बारे में भी समाचार जानने के लिए उत्सुक थे। थोड़ी देर में खबर आई कि मेरी ननद ने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया है। एक पुत्र है एक कन्या है। लड़का मरा हुआ पैदा हुआ है, कन्या जीवित है। (कन्या भी अगले दिन अनंत में विलीन हो गई थी)

उस वक्त इतनी विचित्र स्थिति बन गई थी कि यह समझ ही नहीं आ रहा था कि हँसे तो हँसे कैसे और रोयें तो रोयें कैसे, क्योंकि एक ही कमरा था। वही स्थिति मेरी बहन के ससुराल वालों की भी हुई। खबर सुनते ही सभी एकदम सदमे में आ गए। उनको भी यह बात मालूम थी कि मेरी ननद को पहले चार बार गर्भपात हो चुका है इसलिए वे लोग भी बड़ी उम्मीद से... बड़ी उत्कंठा से शुभ समाचार का इंतजार कर रहे थे। मगर विधिना को कुछ और ही मंजूर था। सारे कमरे में सन्नाटा सा पसर गया था। मिठाई का डिब्बा हाथ में था। वह डिब्बा भी हाथ में ही रह गया। उसको नीचे रखने की हिम्मत भी नहीं थी और किसी को खिलाने की हिम्मत भी नहीं थी। सभी की आँख में आँसू तो थे लेकिन टपकने से बड़ी मुश्किल से रोके हुए थे।

न खुशी प्रकट कर पा रहे थे... न आँसू बहा पा रहे थे। प्रथम संतान की खबर सुनते ही हर रिश्तेदार चहकता हुआ दौड़ा चला आ रहा था और बधाई दे रहा था... लेकिन हमारी गमगीन शक्लों को देखकर माजरा समझ जाते थे और उनके चेहरे की खुशी एकदम खत्म हो जाती थी। विचित्र स्थिति थी। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि...

हँसे तो हँसे कैसे
रोऐं तो रोऐं कैसे

और अन्तर्मन में यह गाना गूँज रहा था...

जिंदगी कैसी है पहेली हाय
इक पल हँसाए, इक पल रूलाये

खामोश आँखों में खुशी भी थी तो दर्द भी था लेकिन अब सभी के लब खामोश थे। विधिना के अनोखे खेल पर सभी अचंभित व ठगे हुए से खड़े थे।

--00--

जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय

सन् 2000 ...धनतेरस का दिन... ननद के श्वसुर की तेरहवीं थी। दीपावली का त्यौहार होने की वजह से पति को अकेले ही जाना पड़ा। किसी अन्य का साथ जाना मुमकिन नहीं था। जहाँ जाना था, वह स्थान हमारे घर से 85 किलोमीटर दूर था। 80 किलोमीटर जा चुके थे कि न जाने अचानक क्या हुआ कि गाड़ी एक पेड़ से टकराई और बुरी तरह पिचक गई।पति का सिर स्टीयरिंग से टकराया और चश्मा टूटकर बाँई आँख के पास गाल में धँस गया।गाल में पचास से ज्यादा टाँके लगे और आज तक उसमें सैन्सेशन नहीं है। गाड़ी का बोनट घुटने से टकराया। घुटने की पाली चकनाचूर हो गई। बाँएँ हाथ की कलाई की तीन हड्डियाँ टूट गईं। ईश्वर की कृपा से कोई मैटाडोर सामने से आई। पति कभी भी गाड़ी लॉक नहीं करते हैं। खिड़की का शीशा भी खुला हुआ था। जैसे तैसे हिम्मत करके दायाँ हाथ हिलाकर अपनी तरफ आने का इशारा किया। यह दृश्य देखा तो उसने मैटाडोर रोकी। जैसे-तैसे इन्हें बाहर निकाला। पति एक छोटा तौलिया हमेशा अपने साथ रखते हैं। आँख के पास से गाल तक का माँस बिल्कुल उखड़ कर लटक गया था।

घर में हम सभी आपातकालीन फर्स्टएड जानते हैं। खाल को ऊपर करके उस पर कसकर तौलिया दबाया, जिससे खून का बहाव कुछ कम हो सके। जहाँ जाना था, वह स्थान केवल पाँच किलोमीटर दूर रह गया था, किन्तु वहाँ का फोन नम्बर जुबानी याद नहीं था। मेटाडोर वाले से ही पूछा कि यहाँ ऐसा डॉ कहाँ मिलेगा जो टाँके लगाना जानता हो। मेटाडोर वाले ने कहा कि यहाँ से विपरीत दिशा में 5 किलोमीटर दूर एक डॉक्टर है। उसी मैटाडोर में सीधे लेटकर डॉक्टर के पास तक गए। उसी दौरान किसी को घर का फोन नंबर दिया और उनसे कहा कि कोसली का फोन नम्बर ले लो। उस व्यक्ति ने मुझे फोन किया और कहा कि फलां नंबर की गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया है।

ऐसी खबरें कई बार सुनते रहते थे कि लोग बेवकूफ बनाने के लिए भी ऐसी अफवाह फैलाते हैं, अतः मैंने सही जानकारी हासिल करने के लिये पूछा:- "गाड़ी किस रंग की है? गाड़ी का क्या नंबर है? जो घायल हुआ है... वह लंबा है या नाटा? काला है या गोरा या साँवला? उसने कपड़े कौन से रंग के पहने हुए हैं?" जब सभी बातें ठीक-ठीक बता दीं तो मेरी इतनी बुरी तरह रुलाई फूटी कि काबू में ही नहीं आ रही थी। मैं रोते-रोते डायरी में नंबर तलाश कर रही थी। उसे कह रही थी "भैया फोन मत रखना। भैया फोन मत रखना। भैया फोन मत रखना।" जैसे-तैसे आँसुओं को पोंछकर मैंने उसे फोन नंबर दिया। इतनी देर में खुद को थोड़ा संयत करके अपने सभी देवरों को फोन किया और घटना की जानकारी दी। सभी अपने-अपने ऑफिस से विकासपुरी के लिए चल पड़े। सभी ने

यह निर्णय किया कि फौरन कोसली चलें। मैंने ही उनको मना किया कि तुम लोग कोसली गये और तुम्हारे भाई दिल्ली के लिए चल पड़े तो इलाज कैसे होगा? पहले वहाँ से कोई सूचना आने दो। कलेजा थामकर हम सूचना आने का इंतजार कर रहे थे। मैंने जाने से पहले पति को अपनी ननद के लिये दिवाली का सामान भी दिया था। हमारे यहाँ लड़कियाँ तेरहवीं के बाद फेरा डालने मायके आती हैं। दीपावली का त्यौहार होने के कारण उनका दिल्ली में आकर फेरा डालने आना संभव नहीं था अतः मैंने ननद के लिए फेरा डालने की साड़ी दी थी कि और कहा था कि उनको मंदिर में ले जाकर मुँह मीठा करा देना और साड़ी दे देना। हमारे यहाँ तेरहवीं पर सगे-संबंधियों को मायके वालों की तरफ से शगुन के लिफाफे भी दिए जाते हैं। वह सारा सामान इन्होंने मेटाडोर वाले से कहकर गाड़ी में से निकलवा लिया था। तब तक गाड़ी के लोगों ने ही कोसली में भी फोन कर दिया था। वहाँ से भी एक गाड़ी इनके पास पहुँच चुकी थी। बहन के घर पहुँचकर वहीं बाहर चारपाई पर बैठ गये (घर के अंदर जाने वाली स्थिति ही नहीं थी) और हमें फोन किया कि विकास को और नवीन को भेजकर जनकपुरी वाले आर्थोपैडिक डॉक्टर का पता करो कि क्या उनके यहाँ एडमिशन की सुविधा है? तब तक हमें यह नहीं मालूम था कि इनको कितनी चोट लगी है। हमें फोन करते-करते बिल्कुल नॉर्मल अंदाज में इन्होंने अपनी बहन को आवाज लगाई... "कुसुम मेरे लिए कॉफ़ी बना दे"। इनकी आवाज से ऐसा बिल्कुल नहीं लग रहा था कि इन्हें इतनी चोटें लगी होंगी। दोनों बच्चों को जनकपुरी भेजा तो पता लगा कि वहाँ एडमिशन की सुविधा नहीं थी। फिर इन्होंने खुद ही प्लान बनाया कि तुम सब जयपुर गोल्डन हॉस्पिटल पहुँचो और मैं मेटाडोर करके सीधा वहीं आ रहा हूँ। इतनी चोटें लगने के बावजूद इन्होंने वहाँ सभी औपचारिकताएँ पूरी कीं। दीपावली का सामान भी दिया। सबके शगुन भी दिए। बहन को मंदिर ले जाकर मुँह मीठा करवाया और साड़ी और मिठाई का डब्बा दिया। जब हॉस्पिटल में एडमिट हुए उस वक्त भी चेहरे पर कोई रोने वाला भाव नहीं था। जो सफारी इन्होंने पहन रखा था, जब डॉक्टर उसे काटने लगा तो हँसकर बोले, "डॉक्टर साहब! यह मेरी बीवी का बहुत मनपसंद सफारी है। इसको काटो मत। उधेड़ दो।" उस समय शुगर 500 थी। डॉक्टर ने न जाने किस प्रकार से मैनेज की और इनका ऑपरेशन किया। जब पति कुछ स्वस्थ हुए तब बाद में हमें सारी बातें पता लगीं कि इन्होंने कोसली के एक गाँव में अपना उपचार किस तरह कराया।

--00--

(2) जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय

जब पति कुछ स्वस्थ हुए तब बाद में हमें सारी बातें पता लगीं कि किस तरह से इन्होंने कोसली के एक गाँव में अपना उपचार कराया था। जब मेटाडोर वाला इन्हें वैद्य जी के पास ले गया तो पति ने उससे पूछा कि "क्या तुम्हारे पास टाँके लगाने का सामान है"?

"हाँ, है। अंदर आ जाओ।"

"नहीं बाहर ही लगा दो"

उसने कहा कि बाहर इन्फेक्शन होने का डर है। अंदर ही आ जाओ। मैटाडोर वाला सहारा देकर अंदर ले गया। टाँके लगवाने के लिये तौलिया हटाते ही खून की फुहारें छूट पड़ीं और डॉक्टर घबरा गया।

"मैंने यहाँ खाल को हाथ से दबा रखा है। आप केवल बोरे की तरह से सिल दीजिए जिससे कि खाल अलग ना हो।" इन्होंने कहा

डॉक्टर ने बोरे की तरह से सिल दिया। अब बारी आई घुटने पर प्लास्टर लगाने की। वह सिर्फ पट्टी बाँधने लगा। तब पति ने डॉक्टर से कहा- "डॉक्टर साहब घुटने के ऊपर और नीचे थोड़ी सी रूई रखकर खपच्ची लगाइए और उसके बाद पट्टी बाँधिए ताकि घुटना मुड़ न सके। इसी तरह से कलाई पर भी खपच्ची और रूई लगाकर पट्टी बाँधिए ताकि कलाई सीधी रहे, क्योंकि मुझे लग रहा है कि इसमें फ्रैक्चर है। डॉक्टर हैरान था कि कैसा मरीज है जो इतनी चोटों के बावजूद भी जिंदादिल है। रोना धोना नहीं कर रहा और आराम से खुद ही आधा डॉक्टर बनकर मुझे समझा रहा है।

पूरा एक महीना जयपुर गोल्डन में एडमिट रहे और इलाज चलता रहा। मैं और मेरा देवर रोजाना दुर्गा सप्तशती का पाठ करते थे। खाना एक समय एक देवरानी लेकर आती थी...। दूसरे समय एक दूसरी देवरानी लेकर आती थी। सुबह-सुबह चाय पति की बुआ का लड़का दे जाता था। उसका घर हॉस्पिटल के पास ही था। उसने पहले हौज़काजी हमारे घर छह वर्ष तक रहकर पढ़ाई की थी अतः काफी आत्मीयता हो गई थी। चार बजे उसकी पत्नी चाय बनाकर ले आती थी। एक देवरानी रोज हम तीनों के कपड़े ले जाती थी व अगले दिन धोकर और प्रैस करके ले आती थी। मेरी दोनों बेटियों का विवाह हो चुका था। एक बेटी का सन् 1995 में तथा एक का 1999 में। मेरे पति की आदत थी कि वो हमेशा दिवाली वाले दिन सुबह सबको दिवाली की शुभकामनाएँ देते थे किंतु उस दिन कैसे देते? हॉस्पिटल में एडमिट जो थे। छोटी दीपावली को तो

मैं घर में नहीं आई, किंतु बड़ी दीपावली की शाम को घर में आना जरूरी था जिससे कि काम चलाऊ पूजा करके 21 दीपक जला सकूँ।

मेरी एक पुत्री की ससुराल भिलाई में थी। उसको इस हादसे के बारे में कोई खबर नहीं थी और हम उसे खबर देना भी नहीं चाहते थे, क्योंकि वह गर्भवती थी। दीपावली की शाम जब मैं घर में आई तो मैंने उसके घर फोन लगाया और बिल्कुल नॉर्मल होकर कहा कि "बेटा! सवेरे तुम्हारे यहाँ कई बार फोन मिलाया, लेकिन तुम्हारा फोन बिज़ी जा रहा था और जैसा कि तुझे मालूम है, तेरे पापा सारे चाचाओं के यहाँ दीवाली पुजवाने जाते हैं। घर में सिर्फ मैं हूँ। विकास का भी तुझे पता है कि पापा के साथ ही जाता है। तू मेरी अपने ससुर से और रोहित जी से बात करा दे।"

उन दोनों को मैंने सारी बात बता दी और साथ-साथ यह भी कह दिया कि पूनम से कुछ मत कहना।

दिवाली की पूजा की औपचारिकता पूरी करके मैं और मेरा बेटा हॉस्पिटल चले गए। तब तक मेरे देवर वहाँ रहे। हमारे हॉस्पिटल पहुँचने के बाद फिर मेरे देवरों ने जाकर अपने-अपने घर पर पूजा की।

हमारा पूरा घर बिजली की लड़ियों से जगमगाता रहता था, किंतु उस दिन बिजली कौन जलाता? हम तो घर में ही नहीं थे। हालाँकि पूरे घर में लाइटें लगा चुके थे, क्योंकि हम धनतेरस वाले दिन से ही भाईदूज तक रात के समय पूरी लाइटें खोल देते थे और घर खूब जगमग करता था। जब धनतेरस वाले दिन पड़ोसियों ने देखा कि हमारे घर की लाइटें नहीं जल रहीं हैं तब उन्होंने घर की कॉलबैल बजाकर पूछा कि क्या हुआ जो लाइट नहीं जल रही हैं? तब किरायेदार ने बताया कि किस प्रकार से हादसा हो गया है और हॉस्पिटल में एडमिट हैं। फिर सारे ही पड़ोसी हॉस्पिटल में देखने के लिए आए और घर की लाइट भी जलवा दीं। पति को ठीक होने में छह महीने लगे। एक महीने बाद घर वापस आए तो घर में ही फिजियोथैरेपिस्ट आता था और फिजियोथेरेपी कराता था। हमारी रिश्तेदारी बहुत बड़ी है। घर में आने जाने वालों का इस कदर तांता लगा रहता था जिसकी कोई हद नहीं थी।मेरे साथ खुद 1995 में हादसा हो चुका था जिसकी वजह से पहले जितनी हिम्मत नहीं थी। बस भगवान से एक ही प्रार्थना करती थी कि तूने ये सब भी कुछ सोच कर ही किया होगा। सुख भी तेरा दिया हुआ है। दुःख भी तेरा दिया हुआ है।

सुख को मैंने जी भर चाहा, तो दुःख में क्यों नीर बहाऊँ?
सुख दुःख सब तुझको ही अर्पण करके अपना जी बहलाऊँ।

विकासपुरी दिल्ली में महाराजा अग्रसेन भवन बनाने में किए गए प्रयास :-

वैश्य अग्रवाल सभा का गठन मेरे ही घर से शुरू हुआ था। हर सप्ताह 20- 25 लोगों की मीटिंग होती थी। उन दिनों मैं नौकरी करती थी। हर रविवार को मीटिंग होती थी। रविवार की सुबह 25 लोगों के बैठने का बंदोबस्त करना, क्रॉकरी निकालना, मीटिंग खत्म होने के बाद सारे बर्तन साफ करना। (क्योंकि तब मैंने कोई मेड नहीं लगाई हुई थी)

सारे काम मैं खुद ही करती थी। सवेरे ऑफिस समय से निकलना होता था, इसलिए बर्तन रात को बारह बजे ही साफ करके रखने पड़ते थे। यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता रहा।

रविवार को मैं खाना नहीं खाती थी क्योंकि डाँट खाकर ही पेट भर जाता था। पतिदेव को यह सब्र नहीं होता था कि मीटिंग का जो समय दिया हुआ है, तो सबको पहले एकत्रित तो होने दें। नहीं, यदि चार लोग आए हैं तो फटाफट पहले उनको **उड़कर** पानी दिया जाए। फिर एकदम उड़कर आओ और कोल्ड ड्रिंक दो। इतनी देर में और चार या पाँच और आ गए तो फिर उनको उड़ कर पानी दो।

चलकर नहीं... उड़कर।

दरवाजा खोलना है तो **उड़कर**! आने में एक सेकंड तो लगेगा। उड़कर कैसे पहुँचूंगी?

लेकिन नहीं, हमेशा आज तक यही उम्मीद की गई है कि उड़कर दरवाजा खोलूँ।

उड़कर पानी दे दूँ।

पानी देने के फौरन बाद कोल्ड ड्रिंक।

दस मिनट बाद ही कॉफी की फरमाइश भी हो जाती थी। फिर खाना बनाने की तैयारी में जुट जाओ। शुक्र है कि जब मीटिंग होती थी तो नाश्ते का सामान बाज़ार से आता था। लेकिन 25 लोगों के बैठने का इंतजाम करना, पानी के लिए ग्लास, कोल्ड ड्रिंक के लिए ग्लास, नाश्ते के लिए प्लेटें चम्मच कटोरियाँ। फिर उन्हें साफ करना। एक बार मैंने कहा "हर हफ्ते मीटिंग हमारे ही घर में क्यों? कभी किसी और के घर में क्यों नहीं?"

तो पति का प्रत्युत्तर था:-

"तुम्हें करना क्या पड़ता है?" सामान तो सारा बाजार से आता है।"

"मुझे कुछ नहीं करना पड़ता? तो ठीक है। अगले हफ्ते जब मीटिंग होगी तो मैं मायके चली जाऊँगी। मुझे तो कुछ करना ही नहीं होता। सब कुछ

तुम कर ही लेते हो। कर ही लोगे। बच्चों के साथ एक रात को रहने के लिए चली जाऊँगी और ऐसे दिन जाऊँगी जिस दिन अगले दिन की छुट्टी हो, ताकि मुझे रात को ही वहाँ से भागना न पड़े और झूठे बर्तनों का ढेर.... जिनसे रसोई पूरी भर जाती है, वो भी साफ ना करने पड़ें। अतिरिक्त कुर्सियाँ व मूढ़े भी ना उठाने पड़ें"।

थोड़ी बुद्धि में बात घुसी और लोगों से कहा कि भाई अब मीटिंग बारी-बारी सबके घर में होगी। अगली बार जब मीटिंग हुई तो किसी के घर में न होकर पार्क में मीटिंग हुई। तब समझ में आया कि किसी की पत्नियाँ उन्हें कितना सहयोग दे रही हैं और अपनी स्वयं की पत्नी कितना?

जब मीटिंग होती थी तो चार-चार घंटे मीटिंग चलती थी और मुद्दों से हटकर कई बार सिर्फ बेमतलब की तल्ख बहस होती थी कि **पिछले हफ्ते इसने ऐसा क्यों कहा? उसने ऐसा क्यों कहा?** वह आवाज बाहर तक जाती थी। उसमें कुछ मित्र ऐसे भी थे, जिसमें से एक बार किसी एक ने कहा कि **"भाभी श्री! हम आपको इतना परेशान करते हैं पर आप हँसते हँसते सारे काम करती रहती हो।"**

"मुझे बिल्कुल भी परेशानी नहीं होती भाईसाहब। आप समाज कल्याण के लिए काम करना चाहते हो। एक समिति गठित करना चाहते हो। एक संस्था बनाना चाहते हो और बाद में एक जगह लेकर वहाँ एक भवन बनाना चाहते हो जहाँ समाज कल्याण के काम हो सकें। किंतु मुझे अफसोस इस बात का है कि **25 बुद्धिजीवी मिलकर तीन घंटे की निरर्थक बहस करते हो। जिसमें सृजनात्मक कुछ नहीं होता। कोई सार्थक बहस नहीं होती। यानी कि 25 लोगों के तीन घंटे के हिसाब से कुल मिलाकर 75 घंटे व्यर्थ की बहस में बर्बाद हो जाते हैं। यदि यही 75 घंटे सार्थक बहस में, सार्थक संवाद में, सार्थक सोच विचार में लगाए जाएँ तो अभी तक यह काम सिरे चढ़ गया होता।"**

यह बात मैंने इस अंदाज में कही कि सभी सुन लें और बड़ी शालीनतापूर्वक कही। शुक्र है कि मेरी बात सभी की समझ में आ गई और उसके बाद व्यर्थ बहस का सिलसिला खत्म हो गया।

सन् 1992 में मेरे ही घर से हमारे ही घर के पते पर **वैश्य अग्रवाल सभा का पंजीकरण हुआ।** चूँकि सभा का पंजीकरण हमारे घर के पते पर हुआ था, अतः मुख्य कार्यालय भी हमारा घर ही बना। तब भी मेरे ही घर पर मीटिंग होती थी। मैंने कभी बुरा नहीं माना। सोचा कि शायद भगवान ने सुपात्र समझकर मुझे यह मौका दिया, किंतु उनके जाने के बाद पतिदेव की नुक्ताचीनी बर्दाश्त नहीं होती थी। **यह कमी रह गई, वह कमी रह गई।** ऐसी बातें और वो भी बहुत देर तक

सुनना बर्दाश्त से बाहर हो जाता था। 25 लोगों को 20 बार पानी देना, कोल्ड ड्रिंक देना, तीन घंटे में दस बार कॉफी बनाना, बार-बार बर्तन समेटना, उनको साफ करना, **गर्मियों में यह सब कितना दुश्वार होता है, यह केवल रसोई में काम करने वाला ही जान सकता है।**

खैर बात हो रही थी भवन बनाने के लिए जमीन लेने के बारे में। चिट्ठी-पत्री का आदान प्रदान, भवन के लिए जमीन लेने का कार्यक्रम शुरू हुआ। उसके लिए भी हर रविवार को मीटिंग होती थी। पत्र व्यवहार होता था। उसके बाद भवन के लिए जगह देखने का सिलसिला शुरु हुआ। उसके लिए भी मेरे ही घर विचार विमर्श होता था और हमारे ही घर सुबह नाश्ता करके यह लोग लोकेशन देखने निकल जाते थे कि कौन सी जगह भवन बनाने के लिए उचित रहेगी। काफी प्रयत्नों के बाद इन्हें एक जगह समझ आई, जहाँ वाहन खड़ी करने की व्यवस्था भी है। उस जगह भवन बनाने के लिए सुझाव रखा गया।

फिर DDA से परमिशन लेने का सिलसिला शुरु हुआ। वह काम भी सिरे चढ़ गया। लेकिन भवन कैसे बने? ऐसा काम कोई एक व्यक्ति तो कर नहीं सकता। उसमें सभी का योगदान चाहिए। वह योगदान कैसे मिले? उन्हीं 25 लोगों ने मिलकर पहले कमेटी डालनी शुरू कीं। फिर घर-घर जाकर अग्र बन्धुओं से सौ रूपये में आजीवन सदस्य बनने का आव्हान किया। आजीवन सदस्य बनने के लिए कई अग्रवाल बंधुओं ने सौ रुपए दिए। जब देखा कि भवन वाकई बनना शुरू हो गया है तो कुछ उद्योगपति भी रुचि दिखाने लगे। उन्होंने उसमें काफी धन लगाया और भवन का निर्माण हुआ। जब एक मंजिल बन गई तब मीटिंग भवन में होनी शुरू हुईं।

अब तो खैर भवन चार मंजिला बन चुका है। बेसमेंट भी बन गया है। लिफ्ट भी लग गई है। उसमें डिस्पेंसरी खोलने का सपना देखा था। डिस्पेंसरी भी खुल गई है। योग की कक्षाएँ भी सुबह शाम दोनों समय लगती हैं और अब वह **वैश्य अग्रवाल भवन** दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है।

उसमें कोई मेरे योगदान को याद करे या ना करे, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। बस खुशी इस बात की है कि जिस काम के लिए इतनी मेहनत की, वह मेहनत रंग लाई।

--00--

ऊषा की मृत्यु का वृत्तान्त

उस दिन यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब मैं ऑफिस से आई तो मेरा देवर और उसका साला आया हुआ था। कभी कोई आया होता है तो आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसको तीन सब्जियों के बिना खाना खिलाया हो जबकि उस दिन तो देवर के साथ उसका साला भी आया था। मैंने फटाफट हाथ धोकर दूसरी सब्जी बनाने के लिए फ्रिज से निकाली। देवर बोला, "भाभी जी बहुत तेज भूख लगी हुई है। दूसरी सब्जी मत बनाओ। घर में जो रखा है, उसी से खिला दो। मुझे पता था कि घर में मैंने दो सब्जियाँ तो बनाई हुईं थीं। यह रोज का रूटीन था। हम लोग सब्जी भी ज्यादा खाते हैं। एक कटोरा तो चखते-चखते ही खा जाते थे इसलिये अचानक दो लोगों के आने पर भी सब्जी कम नहीं पड़ती थी। किन्तु मुझे मालूम था कि यदि दो सब्जियों से खाना खिला दिया तो बाद में मुझे चार घंटे का प्रवचन सुनना पड़ेगा। लेकिन मैं उस दिन यह देख कर आश्चर्यचकित रह गई जब पति ने भी कहा कि जो बनाया हुआ है, वही ले आओ। और जल्दी करो। फिर मकान के लिए सामान लेने चलना है।

यह सन् 1992 की बात है। उन दिनों हमने तीसरी मंजिल बनानी शुरू की थी, क्योंकि एक फ्लोर किराए पर चढ़ाया हुआ था। एक फ्लोर पर हम रहते थे तो बच्चों को पढ़ाई करने में बहुत दिक्कत होती थी। घर में मेहमानों का आवागमन भी बहुत ज्यादा रहता था। पति भी पार्ट टाइम अकाउंट्स का काम करते थे। रविवार को एक अकाउंटेंट काम करने के लिए लगाया हुआ था। वह ड्राइंग रूम में बैठता था और पति बेडरूम में। मैं पूरा दिन गर्मी में रसोई में। इसलिए सोचा कि ऊपर एक फ्लोर बन जाएगा तो बच्चों के लिए और मेरे लिए सुविधा हो जाएगी। खैर जब पति ने खुद ही कह दिया तो मैंने फटाफट फुल्के बनाए सबके लिए खाना परोसा। दोनों बर्नर पर दो तवे रखकर परांठे बनाये। अब यह सोचकर आश्चर्यचकित मत होना कि दो गैस पर एक साथ कैसे बनाए होंगे। तब इतनी हिम्मत थी कि 25 लोगों को एक घण्टे में दो सब्जियों के साथ परांठे बनाकर खिला सकती थी जबकि उस दिन तो केवल दो अतिरिक्त लोग थे। सबको खिला कर खुद भी खाया। पति ने देवर से कहा कि तू यहीं रुक जा। घर में लेबर लगी हुई है। मैं जरा घर का सामान ले आऊँ। और मुझे गाड़ी में बैठा कर सामान खरीदेने चल पड़े। मेरे लिये यह कोई नई बात नहीं थी इसलिये यह सब क्यों किया, क्यों दो

सब्जियों से खाना खिलाने के लिए खुद ही मान गये। रायता तक नहीं बनाने दिया। सलाद भी नहीं काटने दिया। वो तो बाद में समझ आया कि इनके पास मेरे मायके से फोन आया था। मेरी छोटी बहन की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। मुझे इसलिये नहीं बताया कि सुनने के बाद मैं खाना नहीं खाऊँगी और मायके तक का रास्ता पार करना मुश्किल हो जाएगा। देवर व पति ने अपनी बातों से मुझे आभास तक नहीं होने दिया।

पति और मैं मकान का सामान लाने के लिये चल पड़े। तिलक नगर पार कर लिया। मैंने सोचा कि विकासपुरी मोड़ पर मित्तल सैनिटरी स्टोर से सामान न लेना चाहते हों। तिलकनगर से लेना होगा। वहाँ भी गाड़ी नहीं रोकी और मोतीनगर की तरफ बढ़ चले। आखिरकार मैंने पूछ ही लिया कि सामान कहाँ से लोगे। बोले सोच रहा हूँ कि पंजाबी बाग से ले लूँ। मैंने सोचा, शायद किसी ने बताया होगा कि पंजाबी बाग में होलसेल मार्केट में कई दुकानें हैं। वहाँ से कम दामों में सामान मिल जाएगा। इसलिये चुपचाप बैठी रही। जखीरे तक पहूँच चुके तो बोले कि चलो यहां तक आए हैं तो एक चक्कर अशोकापार्क का लगा लेते हैं। सबसे मिलना हो जाएगा। उसके बाद तो मकान बन रहा है, तो न जाने कब आ पायेंगे। अंधा क्या चाहे, दो आंखें। मुझे भला क्यों एतराज होता। अपने मायके जाना किस बेटी को अच्छा नहीं लगता। वहाँ जाकर जो देखा तो मेरे तो होश फाख्ता हो गये। पड़ौस के लोग और मेरी माँ नीचे फर्श पर चादर बिछाकर बैठे थे और रो रहे थे। मुझे देखते ही माँ बुक्का फाड़ कर रोईं और बोलीं, "रानी! ऊषा नहीं रही।"

"हें! ऐसा कैसे? वो तो घूमने गई हुई थी ना?"

"हाँ, वहाँ से वापस आ रहे थे तो सामने से एक ट्रक ने टक्कर मार दी और वो मर गई।

"अरे अम्मा! तुम्हें पता तो है कि वो कितनी डरपोक है। याद नहीं है जब एक बार फूलदान में आग लग गई थी तो ऊषा और बिमला तीन दिन तक बेहोश रही थीं। तुमने तब कितनी झाड़ फूँक कराई थी। अब भी वो डर के मारे बेहोश हुई होगी।"

"हाँ! शायद तू ठीक कह रही है। डरपोक तो बहुत है वो। बेहोश ही हुई होगी। अभी तो सब लोग अस्पताल में हैं। शाम तक सुरेश जी का फोन आएगा।" फिर जो वहाँ बैठे थे, माँ ने उनसे कहा कि चलो सब लोग ऊपर बैठो, नीचे मत बैठो। वो डर के मारे बेहोश ही हुई होगी। सभी उठे और दीवान और सोफे पर बैठ गये।

मैं बाथरूम जाने के बहाने उठी। मैंने कॉटन की कलफ लगी हुई साड़ी पहनी हुई थी। सिन्दूर की बिन्दी लगाई हुई थी। अब किसी को क्या मालूम कि मुझे इस दुर्घटना की कोई जानकारी ही नहीं थी। हर कोई यही सोचेगा कि यहाँ इतना बड़ा हादसा हो गया और सगी बहन इतनी बन- ठनकर आई है। वाशबेसिन पर जाकर साबुन से रगड़ कर लिपस्टिक व बिंदी साफ की।

कितनी खुशी-खुशी मेरी छोटी बहन सपरिवार घूमने गई थी और मधुर यादों के साथ वापस लौट रहे थे। आगे केबिन में बैठे हुए थे। वहाँ कोई सिगरेट पी रहा था। बहन को सिगरेट का धुआँ बर्दाश्त नहीं होता। वह अपनी बेटी के साथ केबिन से बाहर निकलकर बस के बीच वाली सीट पर बैठ गई। खिड़की के शीशे से सर टिका कर बैठी हुई थी। एक शीशा खुला हुआ था। सामने से एक ट्रक आया और टक्कर मारता हुआ निकल गया। शीशा सिर के आर-पार हो गया। बचने की कोई उम्मीद नहीं थी फिर भी सब आशा पाले बैठे थे कि ऐसे भी ठीक हो जाए तो अच्छा है। अपने बच्चों को तो पाल लेगी। सूरत का क्या है। बहुत सुन्दर थी मेरी बहन। मेरे अलावा मेरी तीनों बहनें बहुत सुन्दर थीं। बड़ी बहन तो एकदम मधुबाला जैसी लगती थी। उसकी हँसी भी मधुबाला जैसी ही मोहक थी। उसका सन् 1979 में बहुत बीमार होने के बाद निधन हो गया था। शाम तक मुझसे छोटी बहन के बारे में भी खबर आ गई कि वो नहीं रही। मेरी सबसे छोटी बहन का रो-रोकर बुरा हाल था। उन दोनों की आपस में बहुत पटती थी। सुबह एम्बुलेंस घर की गली के पास की मेनरोड़ से ही गुजरी। सबकी सारी रात रोते-रोते गुजरी थी। सुबह हम सभी सड़क पर इकट्ठा हो गये थे, ताकि उसे देख सकें। घर के पुरुष तो मौत की खबर सुनकर शाम को ही अस्पताल पहुँच गये थे। हम सब एम्बुलेंस के निकलने के पश्चात उसकी ससुराल पहुँचे। उसका मुँह खोलने के लिये उन लोगों ने मना कर दिया था जो उसे अस्पताल में देखकर आए थे। घर की औरतों ने उसे मुँह ढँके ढँके स्नान कराया। कोई भी उसके चेहरे का आखिरी दर्शन नहीं कर पाया। बस कफन में लिपटी हुई लाश देखी। माँ ने कहा, "अच्छा है कि मेरी बेटी वहाँ बैठी थी। यदि मेरे दामाद बैठे होते तो? यह बात मुझे अंदर तक कचोट गई। पर आज जब उनकी जगह खुद को रखकर देखती हूँ तो समझ पाई कि उन्होंने कितना ठीक कहा था। विधवा बेटी के अरमानों को तिल-तिल जलता देखना, और खुद माँ बाप का भी तिल-तिल मरना। बेटी की सूनी माँग देखकर दिल पर जो हथौड़े चलते हैं, उसकी व्यथा तब समझ में आई जब मेरी अपनी बेटी को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा।

--00--

महिला दिवस पर विशेष

लगता है मैं ऐसी भावनाहीन वस्तु हूँ, जिसका फर्ज़ है सबके आदेशों का पालन करना। जो मेरा सुख -दुख का संगी है, उसकी हर इच्छा का पालन करना मेरा कर्तव्य है, किंतु सलाह देने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। वह कुछ भी कहते रहें, चुपचाप सिर झुकाकर सुनते रहना और एक आँसू भी न बहा पाना मेरी लाचारी है, और यह भी मेरी विवशता है कि रोना आते हुए भी मुझे हँसना पड़ता है... क्योंकि मैं नारी हूँ, जिसके लिए बड़े-बड़े उपदेशकों ने यही कहा है... जब पति ऑफिस जाए तो पत्नी उसे अपनी मुस्कान से विदा करे और शाम को जब घर आए तो अपनी मुस्कान से उसका स्वागत। किन्तु आजकल तो पुरूष और स्त्री दोनों कंधे से कंधा मिलाकर काम करते हैं। अक्सर ऐसा भी होता है कि पत्नी पति से पहले दफ्तर जाती है। तब क्या पति का यह फर्ज़ नहीं बनता कि वह भी पत्नी को अपनी मधुर मुस्कान से विदा करे? आप कहेंगे, नहीं! पति का सिर्फ यह फर्ज़ है कि जब पत्नी दफ्तर जाए... तो उसे डाँटे फटकारे। रोज किसी ने किसी बात पर चख-चख करे।

लोग कहते हैं कि सुबह से घर से निकला आदमी शाम को घर में सही सलामत आ जाए तो गनीमत समझो। यदि घर से ही मूड खराब हो जाए तो रास्ते का तो भगवान ही मालिक है। लेकिन क्या यह बात सिर्फ पतियों के लिए ही लागू होती है? क्या सारे अधिकार सिर्फ पतियों के हिस्से में ही आए हैं?

आज नारी किसी भी क्षेत्र में पुरूष से पीछे नहीं है। स्त्री पुरुष समान रूप से गृहस्थी की आर्थिक कठिनाइयों को हल करने में लगे हुए हैं, बल्कि यह कहना कदापि अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज स्त्री को पुरुष से दुगुना काम करना पड़ता है। वह दफ्तर में तो काम करती ही है, घर में आकर भी उसे वही सब काम करने पड़ते हैं जो घर में रहने वाली महिला करती है। जब पत्नी भी पति के समान नौकरी पर जाती है तो क्या कभी पति ने भी यह सोचा है कि वह पत्नी को मुस्कुरा कर विदा करे। जी नहीं... पत्नी के हिस्से में तो केवल डाँट फटकार ही लिखी है।यदि बच्चा सुबह देर से उठता है या स्कूल के वक्त पर तैयार नहीं हो पाता है... क्योंकि बच्चों की आदत होती है सवेरे से उठते ही कुछ ऐसी फरमाइशें करना, जिन्हें पूरा करना संभव नहीं होता। कई बार तो बच्चा अपनी माँग मनवाने के लिए इतनी जिद पकड़ लेता है कि वक्त पर न माँ ऑफिस के लिए तैयार हो पाती है, न ही बच्चा स्कूल

के लिये। पतिदेव को इतनी फुर्सत नहीं है कि वे बिस्तर छोड़कर उठ जायें और बच्चों को मनाने की कोशिश करें। या कम से कम एक बच्चे को ही सँभाल लें। जी नहीं। वो तो तब उठकर आयेंगे, जब दो बच्चे लड़ने लगेंगे और जोर-जोर से रोने लगेगें। आते ही एक-एक इतना करारा झापड़ दोनों बच्चों को मारेंगे कि दोनों का वहीं खड़े-खड़े पेशाब निकल जाएगा और एक जोरदार मुक्का पत्नी के जबाड़े पर रसीद करते हुए चिल्लाएगें... "उल्लू की.... साली से इतना भी नहीं होता कि कम से कम इन बच्चों को तो चुप करा ले। सालों ने नींद हराम कर दी है। चुप हो जाओ हरामजादों... वरना मार- मार कर खाल उधेड़ दूँगा" और पत्नी की तरफ मुखातिब होकर कहेंगे..... "और इस साली को इतनी अक्ल नहीं है कि बच्चों को कैसे टैकल करना होता है?" इतना सब कुछ करने के बाद कमरे में जाकर सो जायेंगे। बच्चे बेचारे मार खाकर रोतेरोते स्कूल चले जायेंगे।

जबाड़े पर मुक्का खाकर पत्नी का चूँकि होंठ सूज गया है अतः आज वह ऑफिस नहीं जाना चाहती। उसे अपनी लाचारी पर बहुत अधिक रोना आ रहा है। नौकरी करने के बावजूद वह अपनी इच्छा से अपने लिए कुछ नहीं ला सकती। पति की हर इच्छा पर कुर्बान होती है। हर क्षेत्र में उसके साथ सहयोग करती है और उसका यह फल! वह सोचती है कि नौकरी छोड़ दे। कम से कम दिन भर अपने घर में कुछ आराम तो करेगी। जी भरकर अपने बच्चों को प्यार तो कर सकेगी। बार-बार चाहती है कि नौकरी छोड़ दे, लेकिन पति यह भी नहीं करने देते। चाहती है कि आज का आकस्मिक अवकाश ले ले, किन्तु जानती है कि इससे बात घटने की बजाए और ज्यादा बढ़ जाएगी और चूँकि वो समझदार पत्नी है, इसलिए बात को वहीं खत्म करने के इरादे से... चुपचाप सूजा होंठ लिये... आँखों में आँसू लिए... होठों पर मुस्कान ओढ़े... ऑफिस चली जाती है।

न जाने कितनी ही बार ऐसी बातें होती हैं, किंतु हमेशा चुपचाप सभी कुछ सहना होता है। इसलिए सहना होता है, क्योंकि मैं नारी हूँ और मैं नारी हूँ यह मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य है। मैं जन्मदात्री हूँ। पुरुषों को मैंने ही तो जन्म दिया है।

मैं एक सबला नारी हूँ। नारी ही है, जो धैर्य धारण कर सकती है, किन्तु अपने कर्तव्य से पलायन कभी नहीं करती। गौतम की तरह शान्ति की तलाश में पति और बच्चों को सोते हुए छोड़कर जाने का बल नहीं दिखा सकती। अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ने का बल नहीं है उसमें। वह पुरूष की तरह

इतनी कमजोर भी नहीं है कि दुःख में जाम पीकर ग़म भुलाने की कोशिश करे और खुशी में भी जाम टकराकर जाम में डूब जाये। वह कम खाकर और ग़म खाकर घर और बाहर दोनों मोर्चे संभालती है। अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अपनों के द्वारा ही किये जा रहे सभी तरह के अत्याचारों को सहने का बल है उसमें। वह इतनी समझदार है कि अपनी गृहस्थी को बचाने के लिए उसे अपनी हार मान जाना मंजूर है। क्योंकि वो वैवाहिक जीवन की सफलता का मूल मंत्र जानती है कि -

जो हार गया वो जीत गया
जो जीत गया वो हार गया

इसलिए वह खुशी-खुशी हार को भी उपहार समझती है। यदि स्त्री भी पुरुष जैसी कमजोर हो तो गृहस्थी उजड़ने में देर नहीं लगती। स्त्री शक्ति स्वरूपा है।

शिव भी शक्ति के बिना शव हैं।

सभी लोग औरत को ही समझदारी की सीख देते हैं। कभी सोचा कि पुरुष को कभी कोई सीख क्यों नहीं देता?

सीख भी तो समझदार को ही दी जाती है।

हाँ मैं नारी हूँ। एक सबला नारी। एक सबला नारी ही घर और बाहर दो मोर्चे संभालने में सक्षम है। तभी तो कहा गया है:--

एक नहीं दो दो मात्राएँ, नर से बड़ी नारी
जब नर से बड़ी नारी, तो फिर कैसी लाचारी

--00--

सपने कैसे कैसे

अचानक से एक मेहमान आ गया। सब्जियां तो बनी रखी थी किंतु आटा नहीं बचा था। घर में सूखा आटा भी नहीं था। डर के मारे जान निकल गई कि यदि इनको बता दिया तो बेहिसाब क्लेश होगा। इनको तो यह सुनना बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं है कि कोई चीज खत्म हो गई है। पहले से ही आदत है घर में जब एक सप्ताह का राशन बच जाए तो उसी समय राशन मंगा लो। खत्म नहीं होना चाहिए। एक सफ्ताह का राशन हमेशा स्टॉक में रहना चाहिए। मेरी खुद यही आदत है, लेकिन कभी-कभी ऐसा हो भी जाता है कि कोई चीज याद नहीं रहती और खत्म हो जाती है। आजकल तो वैसे ही रोजाना इनका एक्सीडेंट होने के कारण हाल-चाल जानने वालों का तांता लगा हुआ है। जो

आता है, उसे कभी खाना खिलाए बिना नहीं भेजती। आसपास के लोग चाय पानी जरूर पीकर जाते हैं और दूर से आए हुए लोग.... बहुत दूर से भी नहीं... चाहे वह 10 किलोमीटर दूर से आए हों, तब भी इनकी इच्छा का मान रखते हुए उनको तीन सब्जियों के साथ खाना खिलाती हूँ। ऊसके साथ रायता और चटनी होना भी बहुत जरूरी है।

हम तो इंसान हैं ही नहीं। हम थकते भी नहीं हैं। मरीज की तीमारदारी भी करो और मेहमानों के स्वागत सत्कार में भी कोई कमी नहीं रहनी चाहिए। आजकल तो मैं वैसे ही सोचती हूँ कि इन्हें कोई टेंशन न हो। शुगर बढ़ गई तो घाव ठीक नहीं होंगे। वैसे ही इतना जबरदस्त एक्सीडेंट हो चुका है। लेकिन एक्सीडेंट होने के बाद भी आदतों में बदलाव कहां आया? किसी की खातिरदारी में थोड़ी कमी रह जाए तो त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं। आते ही उड़ कर पानी देना पड़ता है। फिर उड़कर चाय नाश्ता लगाना पड़ता है। आधा घण्टे बाद यदि लंच या डिनर का टाइम हो तो खाना खिलाना जरूरी है। रोज ही तो कम से कम 20 लोग ऐसे आते हैं दो इनको देखने आते हैं और खाना खाकर जाते हैं। तीन सब्जियों के बगैर खाना खिला दो तो समझो कि क्लेश का माहौल बन जाता है।

अभी पाँच मिनट पहले ही तो पाँच लोग खाना खाकर निकले हैं। सोचा था कि उनके जाने के बाद जैन की दुकान पर सामान लिखवा आएँगी वह घर भेज देता है और वीर बाजार से सब्जी भी लेकर लाऊंगी किंतु इतना मौका ही नहीं मिला। भागकर नीचे किराएदार के पास आई। उसकी बेटी उस समय संयोग से आटा गूँथ रही थी। जल्दी से उसकी परात में से 4 रोटियों का मंढ़ा हुआ आटा उठाया। वो चीं चीं करने लगी। उसकी माँ होती तो कुछ नहीं बोलती, लेकिन बच्चों को काम करने की आदत कहाँ होती है। इसलिए बोलने लगी, "आंटी जी! आंटी जी! आप सूखा आटा ले जाओ ना। मुझे दुबारा माँढ़ना पड़ेगा।"

"तू चुप कर। शोर मत मचा। माँढ़ ले दुबारा।" कहकर मैं ऊपर आ गई। मेहमान को खाना खिलाया। फिर चुप करके घर से निकली। जैन की दुकान पर गई। उसे दालें, मसाले, आटा व चाय वगैरा सामान लिखवाया और कहा कि आज ही आधा घण्टे में भेज दे। फिर सब्जी लेते हुए घर आई। उसके बाद बाथरूम में बैठकर खूब रोई। रोना आ रहा था। इनके सामने तो रो भी नहीं सकते और यह भी नहीं कह सकते कि थक गए हैं। कहने का मतलब है और ज्यादा डाँट खाना। आज तक हमारे काम की परवाह कब की है। हमेशा

आलोचना ही की है, इसलिए टॉयलेट में बैठना मजबूरी थी। हो सकता है कि आँखें लाल हो गई हों। तब तक सामान भी आ गया था। पैसे निकालने के लिये बैडरूम में आई तो बोले," क्या बात है? रो क्यों रही हो?"

मैंने कहा, "कहाँ रो रही हूँ?

"तो आँखें इतनी लाल कैसे हैं?" गुस्से से बोले

"मिर्च के हाथ लग गए थे। उससे हो गई हैं।" मैंने कहा। बस इतने में ही मेरी आँख खुल गई।

तो क्या यह एक सपना था। क्या यह सब कुछ मैंने सपने में देखा था। तब सोचती रही कि सपने में यह सब कुछ क्यों दिखा। अब तो ये कितने बदल चुके हैं। मेरी परवाह भी करते हैं। तारीफ भी करते हैं और पुरानी बातों को याद करके कहते भी हैं कि तुमने सबके लिए बहुत किया हुआ है। फिर ऐसा क्या फोबिया है जो दिमाग से आज तक नहीं निकलता। विभा ने सोचा।

--00--

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

हमारे घर के साथ ही डिस्ट्रिक्ट पार्क है। उसके साथ बहुत सारी झुग्गियाँ बनी हुई हैं। पता नहीं कौन पार्क में नल खोल कर हौज़पाइप लगा देता है। सर्दियों में दस बजे से शाम के पाँच बजे तक वो हौज़पाईप चलता रहता है तथा गर्मियों में सुबह सात बजे से खुल जाता है। उस हौज़पाइप से पौधों में पानी नहीं दिया जाता है बल्कि झुग्गी वाले नहाते हैं और साबुन की टिक्की से मल-मलकर कपड़े धोते हैं। जिसका नतीजा यह होता है कि जो काम दो बाल्टी पानी में किया जा सकता है, उसके लिए फ्री का चालिस बाल्टी पानी खर्च होता है। उन्हें कई बार समझाया कि तुम लोग बाल्टी में पानी भर लिया करो और अपने घर जाकर वहीं नहाया करो और कपड़े धोया करो। तुम्हारे लिए नल लगवा दिया है। वहाँ से पानी भर लिया करो। लेकिन किसी की समझ में कुछ नहीं आया। पार्क में जो लोग घूमने आते हैं, उनसे भी कहा कि इन्हें टोका करो। जब इनके लिए नल लगवा दिया है तो ये लोग वहाँ से पानी भरकर घर जाकर नहाएँ धोएँ क्योंकि हौज़ पाइप चलने का मतलब है, एक मिनट में कम से कम दस बाल्टी पानी बहना। देश में वैसे ही पानी की कमी है। धीरे धीरे पानी का स्तर कम होता जा रहा है। हमारे घरों में मोटर लगाने के बाद भी सुबह केवल एक घंटे पानी आता है। शाम को तो आता ही नहीं है। यहाँ पार्क में रोज एक हजार बाल्टी पानी कुछ लोगों के नहाने व

कपड़े धोने में बर्बाद हो जाता है।पार्क का यह हाल हो गया है कि यह पार्क कम, जंगल ज्यादा लगता है।

सबका यही कहना था कि हम क्या कर सकते हैं? इनको मना करने से भी कुछ नहीं होने वाला। परिवार कल्याण समिति के अध्यक्ष को कहा तो उनका भी यही कहना था कि मैं कई बार मना कर चुका हूँ लेकिन यह लोग नहीं मानते।

"इसका मतलब यह हुआ कि धीरे-धीरे पार्क जंगल में तब्दील हो जाएगा और हम लोग इतने बेबस हैं कि कुछ नहीं कर पाएँगे" मैंने कहा।

वे व्यंग से बोले:-- 'आप ही कुछ करके देख लो'।

'ठीक है, अब मैं ही कुछ करके दिखाऊँगी'।

यह उन दिनों की बात है जब मैं नौकरी करती थी। मैं रोजाना चार बजे ऑफिस से आती थी और उसी पार्क से होते हुए आती थी। मैंने रोजाना औरतों को समझाना शुरू किया कि यदि अब यहाँ नहाती हुई नजर आ गईं तो अच्छा नहीं होगा। हर रोज नए चेहरे नजर आते थे और वह कहते थे कि आंटी जी हम तो आज ही नहा रहे हैं। अब उन लोगों ने पार्क में रोजाना जगह बदल-बदल कर नहाना और कपड़े धोना शुरू कर दिया। साबुन के पानी से लगातार एक ही जगह हौज़पाइप चलने से सारी क्यारियाँ पानी से लबालब भर जाती थीं। उनको पल्लवित, पुष्पित होने की नौबत ही नहीं आने पाती थी। एक दिन जब मैंने बहुत डाँटा और कहा-

तुम लोगों को बीस बार कहा कि बेशक तुम लोग बीस बाल्टी पानी भरो, लेकिन घर जाकर नहाओ और घर में ही कपड़े धोओ। तुम लोग हर रोज आठ दस लोग केवल नहाने व कपड़े धोने में एक हजार बाल्टी पानी खर्च करते हो। जो पाइप पेड़- पौधों को पानी देने के लिए लिए लगाया जाता है, उससे पार्क में पानी नहीं दिया जाता, बल्कि एक ही जगह तुम लोग वहाँ साबुन मिले पानी का तालाब बना देते हो। सारे पार्क का सत्यानाश करके रख दिया है। क्या तुम लोग नहीं चाहते कि तुम्हारी झुग्गियाँ यहाँ रहें?'

उस दिन जो औरतें नहा रही थीं, उनमें से एक बड़ी तेज तर्रार थी। बोली- 'नहीं रहेंगी तो क्या हुआ? सरकार कहीं और जगह दे देगी।'

'सरकार क्यों जगह दे देगी?'

'क्योंकि हम सरकार को वोट देते हैं '

'सरकार को तो हम भी वोट देते हैं'।

'कोई कह रहा था कि सरकार को पढ़े-लिखे लोग वोट नहीं देते। झुग्गी बस्ती वाले ही सरकार को वोट देते हैं। तभी तो सरकार हमें वोट के बदले में मुफ्त कम्बल बाँटती है और बिजली और पानी भी मुफ्त में देती है।' मैंने कहा- 'अच्छा ऐसी बात है। तो तुम्हें जो करना है वह करो। अब मैं रोज तुम लोगों की नहाते हुए और हौज़पाइप से कपड़े धोते हुए फोटो लूँगी। तुम लोग अब अखबार में और टी.वी पर ही देखना कि तुम लोग नहाने और कपड़े धोने में कितना पानी खर्च करते हो?

मैं फौरन घर आई। पर्स रखा और हैण्डीकैम लेकर पार्क में चली गई। उन लोगों की फोटो खींचने के लिए फोकस किया ही था कि सारी औरतें धोने वाले कपड़े भी वहीं छोड़कर गधे के सिर से सींग की तरह गायब हो गईं। थोड़ी देर बाद एक औरत मेंढक की तरह फुदक-फुदक कर छिप-छिप कर, पूरा चेहरा घूँघट में छिपाकर आई और सारे कपड़े उठाकर एकदम वहाँ से उड़न छू हो गई।

अगले दिन रविवार था। मेरी छुट्टी थी। वैसे तो मेरी तबीयत रोज ही खराब रहती है और डाक्टर की सख्त हिदायत है कि मैं बिल्कुल स्ट्रैस न लूँ, लेकिन इन कामों के लिए न जाने कहाँ से जुनून पैदा हो जाता है। वैसे भी मेरा मानना है कि -

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

अगर समाज के लिए कुछ करना है तो इतनी हिम्मत तो जुटानी ही पड़ेगी और मुझे हिम्मत जुटानी नहीं पड़ती। मुझमें हिम्मत अपने आप ही आ जाती है।

रविवार था। मेरी छुट्टी थी। मैं उस दिन पार्क में दोपहर ढ़ाई बजे चली गई। उस दिन पहले दिन वाली नहीं, अपितु अन्य दूसरी औरतें कपड़े धो रही थीं। एक बच्चों को नहला रही थी। दो आदमी नहा रहे थे। हौज़पाइप से पूरे प्रेशर से पानी आ रहा था। जहाँ वे नहा रहे थे, वहाँ तालाब सा बन गया था। पहले मैंने चारों तरफ आराम से घूम-घूमकर देखा। उन्हीं के सामने अपने मोबाइल से किसी को फोन किया और बोलना शुरू किया कि- **रोजाना अपना कैमरा लेकर पार्क में ग्यारह बजे से शाम के चार बजे तक घूमा करो, लेकिन ध्यान रहे कि किसी को मालूम न हो कि तुम कैमरा लेकर घूम रहे हो, वरना सब गायब हो जाएँगे। जहाँ भी पार्क में हौज़पाइप से लोग नहा रहे हों या साबुन की टिक्की रगड़कर कपड़े धो रहे हों, उसका (जितनी देर तक वे लोग नहाएँ या कपड़े धोएँ, उतनी देर का) पूरा फोकस लेना और चुपचाप लेना।**

अखबार और टी.वी पर दिखाना कि देश में पानी की कोई कमी नहीं है। हमारे देश में जितने पानी में चालीस कपड़े धुल जाते हैं, वहाँ कुछ लोग चालिस बाल्टी पानी केवल एक कपड़ा धोने में बर्बाद करते हैं।

यह बात मैंने इस तरह कही जिससे वे लोग सुन सकें, लेकिन उन्हें ये भी न लगे कि मैं ये बातें उन्हें सुनाने के लिए कह रही हूँ।

मेरा मुँह उनकी तरफ नहीं था। मेरी पीठ उनकी तरफ थी और मैं घूमते-घूमते जोर-जोर से मोबाइल पर यह बातें कर रही थी। हालाँकि मैंने फोन किसी को नहीं किया था। वह केवल उनको सुनाने के लिए था।

अगले दिन सुबह मैंने माली से पूछा कि हौज़पाइप कितने बजे से कितने बजे तक चलता है?

'सुबह नौ बजे से शाम पाँच बजे तक' वह बोला।

'दो घंटे में पार्क में पानी दिया जा सकता है तो पूरे दिन पाइप क्यों चलता है? पूरा पार्क जंगल बन गया है। खैर **आपको जो करना है, आप करो और जो हमें करना है हम करेंगें'** कहकर मैं ऑफिस चली गई।

तब से आज तक रोज देखती हूँ कि सुबह पार्क में झाड़ू लग रही होती है। सुबह शाम झुग्गियों की औरतें और बच्चे डिब्बों में पानी भरकर ले जा रहे होते हैं। अब वहाँ कोई नहाता या कपड़े धोता हुआ नजर नहीं आता। यह देखकर इतनी खुशी हुई कि बता नहीं सकती और किसी की लिखी हुई यह पंक्तियाँ याद आ गईं -

'कौन कहता एक मनुज कुछ कर नहीं सकता'?

मेरा मानना यह है कि असफलता से भी यह सीखो कि हमारा सफल होने का इरादा मजबूत नहीं था और पुनः अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए नए उत्साह से जुट जाओ। जब इच्छा शक्ति हो तो असंभव को संभव करने के रास्ते भी मिल ही जाते हैं।

मैं एक बात और भी सोच रही थी। यदि सरकार इन लोगों को मुफ्त में जगह देती है, तो इन लोगों के लिए एक काम और भी तो कर सकती है। जैसे सोसाइटी सात मंजिली बन सकती है, तो इन झुग्गी वालों के लिए भी सरकार कम लागत वाले सात मंजिला मकान बनाकर क्यों नहीं दे देती... जिसके बीचोंबीच एक पार्क हो... जैसा सोसाइटी के फ्लैट्स में होता है। जितनी जमीन सरकार इन लोगों को देती है, और जितने लोग उस पर झुग्गियाँ बनाकर रहते हैं, उससे भी कम जगह में उन लोगों को कम लागत वाले बने बनाए घर देकर कम किराया वसूले। ऐसा करने से उस जमीन पर उससे तीन

सौ गुणा ज्यादा लोग रह सकते हैं और झुग्गियाँ देखकर जो विपन्नता, निर्धनता का एहसास होता है, वह भी नहीं होगा और हम गर्व से कह सकेंगे कि हमारे देश में झुग्गी बस्तियाँ नहीं हैं। हो सकता है मेरा यह सपना मात्र स्वप्न बनकर ही रह जाए। **किंतु स्वप्न देखने का हक तो है ना मुझे**

--00--

मदद करना दुखदाई बन गया

मुझे कढ़ाई सिलाई बुनाई करने का बहुत शौक था, लेकिन इस शौक ने मुझे परेशान भी बहुत किया।

जब हम विकासपुरी में आए थे तो यहाँ किसी तरह की कोई सुविधा नहीं थी। 10-12 मकान थे। आपस में अच्छा मेलजोल था। सबको पता था कि मैं बहुत अच्छी कढ़ाई, बुनाई, सिलाई कर लेती हूँ। लोग मुझसे स्वेटर बुनना भी सीखते थे, और कढ़ाई भी सीखते थे। वह मुझसे कपड़े भी कटवाते थे और सिलाई करना भी सीखते थे। यहाँ तक कि आधी बार तो वह कपड़े मुझे ही पूरे सिलने भी पड़ते थे जिसकी वजह से एक बार तो मुझे इतनी परेशानी हुई कि मैं क्या बताऊँ!

मेरे सगे मामा जी का लड़का (जिसकी शादी केवल डेढ़ महीने पूर्व हुई थी) तीज के अवसर पर अपनी पत्नी को उसके मायके से लेने जा रहा था कि रास्ते में ही उसका एक्सीडेंट हो गया। हम सब बहनें तीज के दिन मायके जरूर जाती थीं और खूब झूला झूलती थीं और सावन के गीत गाती थीं। अच्छी तरह तैयार होकर हम इंतजार कर रहे थे कि भाई हमारी भाभी को लेकर आएगा और हम सब उत्साहपूर्वक झूला झूलेंगे, किंतु वहाँ से समाचार आया उसकी मौत का!

हम सभी बहनें, मेरी माँ (मेहंदी रचे हाथ, खूब श्रृंगार किया हुआ) फौरन जैसे बैठे थे, उसी अवस्था में शोकसंतप्त हृदय के साथ जल्दी से मामा के घर के लिए रवाना हो गए। वहाँ जाकर पता लगा कि उसका एक्सीडेंट उसी दिन हो गया था जिस दिन वह अपनी पत्नी को लेने गया था, किंतु समाचार तीन दिन के बाद तीज वाले दिन मिला। डैड बॉडी भी अभी तक नहीं आई थी। घबराहट में घर के लोगों को यह भी पूछना याद नहीं रहा कि मृत शरीर कहाँ है? दिल्ली के सारे अस्पतालों में सबने चक्कर लगाए किंतु उसका मृत शरीर नहीं मिला। फिर किसी ने सुझाव दिया कि वह रोहतक की तरफ जा रहा था। हो सकता है उधर ही एक्सीडेंट हुआ हो तो वहीं आस-पास के

अस्पतालों में देखा जाए। सबने वहाँ जाकर डैड बॉडी के कपड़े हटा-हटा कर देखा। उसके छोटे भाई को एकदम उसके पैर नजर आए और पहचान गया यही मेरा भाई है क्योंकि मुंह तो देखा ही नहीं जा रहा था।

उसकी डेड बॉडी को रोहतक से किसी प्रकार दिल्ली लेकर आए। जवान लड़का था। उस वक्त भी इतना खून बह रहा था कि कई लोग तो देखते ही बेहोश हो गए इसीलिए उसके शरीर को खोला भी नहीं गया। नहलाया भी नहीं गया यह सोचकर कि कहीं ऐसा न हो कि उसको देखकर 2-4 और मर जाएँ।

सारी रात उसके इंतजार में रो-रो कर आँखें सूज कर कुप्पा बनी हुई थीं। अगले दिन संस्कार होने के बाद जब मैं अपने घर वापस आई तो कॉलोनी में एक महिला शायद मेरे ही आने की इंतजार में छज्जे में खड़ी हुई थीं। मेरे पीछे पीछे ही घर में आ गईं और मुझसे कहा कि जरा यह पाजामा काट दो।

अभी आकर मैंने पानी भी नहीं पिया था।

सारा घटनाक्रम उन्हें बताया। यह भी कि "मैं बिल्कुल भी इस हाल में नहीं हूँ। मेरा सिर दर्द के मारे फटा जा रहा है और मेरी आँखों का हाल देखो। किस प्रकार सूज गई हैं। क्योंकि हम 24 घंटे से लगातार रो ही रहे हैं।"

"लेकिन यह बहुत जरूरी है। कल ही चाहिए।"

"यदि गलत कट जाएगा तो क्या होगा? मेरी मनस्थिति इस समय बिल्कुल भी ठीक नहीं है। मेरा सिर दर्द के मारे फटा जा रहा है। इस वक्त इसको रख जाओ। जब मैं थोड़ा ठीक हो जाऊँगी तो बाद में काट दूँगी"।

कपड़ा लेकर वापस चली गईं।

उन दिनों यहाँ पर दूध नहीं मिलता था।उनके पति मेरे बच्चों को लेकर जनकपुरी से अपने लिए भी दूध लेने जाते थे। बस मेरे बच्चों को केवल साथ मिल जाता था। उन्होंने अपने पति को मना कर दिया कि उनके बच्चों को साथ में ले जाने की कोई जरूरत नहीं है और उन्होंने अगले दिन से बच्चों को ले जाना भी बंद कर दिया।

पति जम्मू में ट्रेनिंग करने गए हुए थे। जब भी उनकी दो छुट्टियाँ होती थीं, वह दिल्ली आ जाते थे और उस पड़ौसिन के पति को बुलाकर उसके साथ दो जाम टकरा लेते थे।

उसी ने मेरे पति को बताया कि भाभी जी ने मेरी पत्नी को नाराज कर दिया है। पति ने मुझे बताया।

मैं बड़ी आश्चर्यचकित हुई कि मैंने किस बात में नाराज कर दिया है? फिर भी मैं उनके घर गई जिससे कि उनकी किस बात की नाराजगी है, यह पता लग सके।

"भाभी जी! आप किस बात से मुझसे नाराज हो? "मैंने पूछा

"मैंने आपसे कहा था यह पाजामा काट दो और आपने मना कर दिया"।

"मैंने मना नहीं किया था। मैंने यह कहा था कि मेरे मामाजी के लड़के का एक्सीडेंट हो गया है। उसके विवाह को अभी केवल डेढ़ महीना हुआ था और उस वक्त रो-रो कर मेरा बुरा हाल था।"

"हाँ मुझे मालूम है। आपने यह कहा था। लेकिन कोई मर जाता है तो कोई काम नहीं रुक जाते? काम सभी करने पड़ते हैं। मैंने आपसे कहा था यह बहुत जरूरी है। कल ही चाहिए।"

"भाभी जी! एक बात सुनो। कोई हादसा होता है तो वक्त लगता है उसे भूलने में। धीरे-धीरे इंसान उसे भूलने की कोशिश करता है, लेकिन जब ज़ख्म ताजा होता है तो एकदम नहीं भरता। जो दुख मुझे उस दिन था, एक महीने बाद थोड़ा सा कम हो गया। दूसरे महीने थोड़ा सा और कम हो गया। ठीक है बाद में थोड़ा और कम हो जाएगा, लेकिन उसको बिल्कुल भुला तो नहीं पाऊँगी। उस वक्त मेरी मनःस्थिति बिल्कुल भी ऐसी नहीं थी कि मैं कुछ भी कर पाती। यहाँ तक कि मैंने घर में आकर खाना भी नहीं बनाया था क्योंकि खाना बनाने का मन ही नहीं था। बच्चों के लिए भी सिर्फ जीरे वाले चावल बनाए थे।"

"हाँ तो मैंने इसीलिए इनको मना कर दिया था कि उनके बच्चों को साथ में ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। मेरा इतना जरूरी काम और उन्होंने करने से मना कर दिया।"

मैं समझ गई कि ऐसे इंसान को समझाना या गलतफहमियाँ दूर करना बिल्कुल बेकार है।

--00--

31/10/1984 का वो खौफनाक मंजर

"उफ्फ कितना भयानक मंजर था वह।"

"किसकी बात कर रही हो आंटी?"

सुधा एकदम जैसे सपनों से जागी और बोली कि बस उस दिन को याद कर रही हूँ।

"किस दिन को?"

"31 अक्टूबर सन्1984 का दिन था बेटा। उसी दिन तेरे अंकल की पदोन्नति हुई थी। इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई थी, लेकिन तब तक यह खबर लीक नहीं हुई थी। अगले दिन 1/11/1984 को अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट देने के लिए दूसरे दफ्तर गए थे, वहीं पर पता लगा कि राज्य में बुरी तरह से दंगे शुरू हो गये हैं और मारकाट मची हुई है। सारे दफ्तर स्कूल वगैरह सभी में छुट्टी कर दी गई है। तेरे अंकल के पास टू व्हीलर था। अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट मेज पर रखकर फौरन वहाँ से भागे। मैं उस समय विष्णु गार्डन के एक स्कूल में नौकरी करती थी। वहाँ से मुझे लिया। रास्ते में ही खौफनाक मंजर देखा था। एक कोयले की टाल थी उसी के पास कुछ लोगों द्वारा एक सरदार को हमने जिंदा जलाते हुए देखा। इसलिए इतनी अधिक दहशत हो गई थी कि बता नहीं सकते, क्योंकि बस स्टॉप पर जाने के लिए वही रास्ता था। उस रास्ते से तो बेटियाँ बस स्टॉप तक जा ही नहीं सकती थीं, तो कहाँ रह रही होंगी? तिलक नगर के स्कूल में पढ़ती थीं। स्कूल की छुट्टी हो चुकी थी। हमारी तो जान हलक में अटक गई क्योंकि जिस रास्ते से..... पररररर.... "कहते कहते फिर आंटी का गला भर आया।

खुद को संयत करके जैसे तैसे बोली

"उनकी कोई सहपाठी स्कूल के पास ही रहती थी। दोनों उसी के घर चली गई थीं। मेरी बेटी छज्जे में खड़ी हुई थी। पापा पापा कहकर आवाज लगाई तो जान में जान आई। हम तीनों को छोड़कर ये फौरन बेटे को लेने के लिए भागे, क्योंकि वह जनकपुरी के स्कूल में पढ़ता था। जब तक ये घर में नहीं आ गए, हमारी जान हलक में अटकी रही" कहते कहते सुधा का गला भर आया और वो फिर से न जाने किन खयालों में खो गई।

"आंटी किन ख्यालों में खो गई हो? पूरी बात तो बताओ।"

"ओहो! पता नहीं क्यों, जब भी उस दिन की याद करती हूँ तो यही हाल हो जाता है और वह सारे दृश्य आँखों के सामने तैर जाते हैं। वेतन तो

मिला नहीं था और पहले नौकरी पेशा लोग वेतन मिलने के बाद ही घर के लिए एक महीने का राशन लाते थे। मुश्किल से एक-दो दिन के लिए दाल वगैरा पड़ी होती थी। शुक्र है कि घर में आटा था। तीन दिन तक कर्फ्यू लग गया। मिल्क बूथ के अलावा कोई दुकान नहीं खुली। कोई सब्जी वाला नहीं बैठा। घर में बनाने के लिए कोई सब्जी नहीं थी। दो दिन दाल बनाई। फिर तीसरे दिन तेरे अंकल बड़ी मुश्किल से ढूँढ कर कहीं से एक मूली लेकर आए। सिर्फ एक मूली मिली। जिंदगी में पहली बार पता लगा कि मूली के छिलकों के परांठे भी बन सकते हैं। मैंने मूली कद्दूकस की। उसके छिलकों को बारीक बारीक काटा और उनको मसाले डालकर कढ़ाई में डालकर थोड़ा भूना। उसके बाद उसे भरकर भरवां परांठे बनाए और अचार के साथ खाए। इतने स्वाद लगे कि बता नहीं सकती। तब पहली बार पता लगा कि मूली के छिलकों के भी परांठे बन सकते हैं।

उन दिनों हर सरदार डरा हुआ था। सबके दिलों में खौफ था। मुझे आज तक समझ नहीं आया कि जगह-जगह सरदारों का जो कत्लेआम हुआ... वह किसने किया? आम जनता ने तो बिल्कुल नहीं किया। हमारी अपनी गली में भी एक सरदारों का परिवार रहता था। पूरी गली ने उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाई। मेरा घर बिल्कुल कोने पर था और घर के साथ ही बहुत बड़ा डिस्ट्रिक्ट पार्क है। दो मंजिल बना हुआ था तो उसकी छत से सब कुछ नजर आता था कि किस तरह से रात को गाँव के लोग लाठी लेकर शोर मचाते हुए निकलते थे। मेरी छत पर रात को गली के लोग बारी-बारी से पहरा देते थे।

पहले फोल्डिंग पलंग होते थे। छत पर उनको ही बिछाकर बारी-बारी कुछ लोग जागते थे और कुछ लोग सो जाते थे। दो-दो घंटे की बारी बाँधी हुई थी। उनके लिये चाय बनाने की जिम्मेदारी मेरी होती थी तो हर दो घंटे बाद मैं उनको चाय बनाकर देती थी। हालाँकि मेरे घर की एक गली छोड़कर दूसरी गली में एक कोने का तीन मंजिला मकान था जहाँ से और भी साफ नजर आता था, लेकिन जिम्मेदारी हर कोई तो नहीं उठा सकता ना। यह सौभाग्य भी भगवान किसी किसी को सुपात्र समझ कर ही देता है। शायद इसीलिए मुझे यह सौभाग्य मिला कि मैं कुछ सेवा कर सकूँ।

कुछ साल बाद मेरी प्रोन्नति एक ऐसे स्कूल में हुई जहाँ पर चतुर्थ श्रेणी में नौकरी पर लगाई गई दो ऐसी स्त्रियाँ थीं जिनके पतियों को उन दंगों के दौरान मार दिया गया था। उन्हें तिलक विहार में घर मिला था। उनसे ही

बहुत सारी बातें सुनने को मिलीं कि किस तरह से उनके पतियों को बाल पकड़- पकड़ कर पीटा गया और जिंदा जलाया गया। कईयों के बच्चों को भी मार दिया गया। जो बचे उन सभी ने अपने बच्चों के बाल कटवा दिये।

"घर मिल गया। पैसा भी मिल गया... लेकिन जब बच्चे भी नहीं रहे... घरवाला भी नहीं रहा तो क्या हमारा वह दर्द... जो हमने देखा है और झेला है... वह दूर हो जाएगा? क्या सरकारी नौकरी मिलने से हमारा वह दर्द दूर हो जाएगा?" कहते कहते उनकी आँखों में जो दर्द झलकता था, वह बर्दाश्त नहीं होता था। मन तो करता था कि उनसे विस्तारपूर्वक सारी बातें पूछूँ, लेकिन उनके बहते हुए आँसुओं को देखकर पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। हमने तो केवल एक सरदार को जिन्दा जलते हुए देखा जो हमारे लिये एकदम अपरिचित था तो जिन्होंने अपनों की ऐसी दर्दनाक मौत अपनी आँखों से देखी, उनकी पीड़ा का वर्णन करना तो शब्दों की ताकत से बाहर की बात है|

--00--

बिमारी का कारण ढूँढने की जहमत कौन उठाए (ऐलोपैथी का सितम)

एक बार मेरी बेटी मायके आई हुई थी। उसका बड़ा बेटा दो साल का था। उसके दाँत निकल रहे थे जिस वजह से उसे बहुत तेज बुखार हो गया था। डॉक्टर को दिखाया। उसने दवाई दी और कहा कि यदि तबीयत ज्यादा खराब हो तो मेरे घर ले आना। फलाँ सोसायटी में चौथी मंजिल पर मेरा घर है।

यह बात सन् 2003 की है। हम सब बैठे हुए रात को खाना खा रहे थे। नाती को मेरी बेटी ने अपने कंधे से लगा रखा था। अचानक नाती का सर एक तरफ झूल गया। मुँह से झाग निकलने लगे।उसके नाना की नजर पड़ी। नाती को बेटी की गोद से खींचकर यह कहते हुए बाहर लेकर भागे कि **यह तो गया**। पीछे-पीछे मेरा बेटा और बेटी भी भागे। सभी नंगे पैर ही भाग पड़े। मेरी गोदी में दो महीने का नाती था। जब तक मैं बाहर निकली, बेटा गाड़ी स्टार्ट करके निकल चुका था। हड़बड़ी में दूसरी सोसाइटी के चार मंजिला फ्लैट पर गए। नाती नाना की गोद में था। वो नाना...जिसकी एक मंजिल सीढ़ी चढ़ने में साँस फूल जाती है, उसे लेकर चार मंजिल तक चढ़े। वहाँ जाकर पता लगा कि डॉक्टर इसमें नहीं, अपितु पास वाली दूसरी सोसायटी में उसका फ्लैट

है। चार मंजिल नीचे उतरे। फिर दूसरे फ्लैट में चार मंजिल चढ़े। डॉक्टर ने बच्चे की हालत देखी और कहा कि इसे फौरन फलाँ अस्पताल ले जाओ। मैं वहीं पहूँच रही हूँ। उसे अस्पताल लेकर भागे और दाखिल करवाया। डॉक्टर भी पहूँची। नाती के दुनिया भर के टेस्ट किये गये। मलेरिया, टाइफाइड, मेनिनजाइटिस... और न जाने क्या-क्या टेस्ट किए। ग्लूकोस चढ़ाया। कैन्यूला हथेली के पिछली तरफ लगा दिया। बच्चा बार-बार ग्लूकोस के पाइप को खींचता था और उसमें से बुरी तरह से खून बैक फ्लो करने लगता था। सिस्टर को कई बार समझाया कि इसे पट्टी से कवर कर दो ताकि बच्चा बार-बार इसको देखकर पाइप न निकाल पाए। उसका कहना था कि फिर पट्टी खोलने में मेहनत करनी पड़ती है। हमारा कहना था कि मेहनत तो अब भी करनी पड़ती है। बच्चा बार-बार पाइप खींच लेता है और खून निकलना शुरू हो जाता है, लेकिन कोई असर नहीं हूआ। फिर डाँट मारनी पड़ी, तब कहीं जाकर उस पर पट्टी बाँधी।

मेरा बेटा नाती को गोदी में लेकर घुमाता रहता था। एक हाथ से ग्लूकोज़ स्टैंड को घुमाता रहता था, ताकि वह बार-बार पाइप को न खींचे। सात दिन नाती वहाँ दाखिल रहा। बुखार उतर गया था इसलिये डॉक्टर ने छुट्टी दे दी। जो डिस्चार्ज समरी दी थी, वो उसके दादा ने मँगवाई थी, अतः उसकी फोटोकॉपी करा कर बेटी के ससुराल डाक द्वारा भेज दी थी। उस समय तक स्मार्टफोन नहीं आये थे। बिटिया का ससुराल दिल्ली से 36 घंटे की दूरी पर था।

मेरा बड़ा नाती अपने दादके में सबकी आँख का तारा था क्योंकि घर में 14 साल के बाद औलाद पैदा हूई थी। बेटी की जेठानी के कोई बच्चा नहीं हूआ था। दादा दादी की जान अपने पोते में ऐसे बसती थी जैसे किसी की जान तोते में होती है। जब उसके ससुर ने डिस्चार्ज समरी पढ़ी तो वे घबरा गये। उनका फोन आया कि मेनिनजाइटिस के लिए उन्होंने क्या किया?

छुट्टी दिलवाकर घर ले आए थे, लेकिन अगले दिन उसको फिर बहूत तेज बुखार हो गया। देखा तो 103 डिग्री बुखार था। उसको ठंडे पानी की पट्टियाँ करते रहे ताकि दिमाग में बुखार न चढ़े। टेंशन भी हो गई कि क्या होगा। मैंने बेटी से कहा, "इसको अपने दादा के यहाँ भी बार-बार बुखार हो रहा था, जैसा कि उन्होंने ही बताया था कि डेढ़ महीने से बार-बार बुखार हो रहा था। वो भी वह एलोपैथी इलाज करवा रहे थे, हमने भी एलोपैथिक इलाज करा कर देख लिया। बुखार उतर जाता है, लेकिन दोबारा हो जाता है। मेरी

बात मान तो इसको होम्योपैथिक डॉक्टर को दिखा लेते हैं। यहाँ पास में ही बहुत अच्छा डॉक्टर है। शाम को छह बजे बैठेगा।"

रोने लगी। बोली, "इसे कुछ भी हो गया तो मेरी सास मुझे जान से मार डालेंगी। क्या तुम इसकी जिम्मेदारी ले रही हो?"

मैं भी थोड़ी सोच में पड़ गई। आखिरकार मैंने अपने दिल को कड़ा किया और कहा कि हाँ मैं जिम्मेदारी ले रही हूँ। शाम को उसे होम्योपैथी डॉक्टर को दिखाया। उसने बताया कि इस बच्चे के दाँत तो निकल चुके हैं। अब कीले निकल रहे हैं। कीले हमेशा हड्डी को तोड़कर निकलते हैं और उसमें बुखार होता है। यदि बुखार रोकने की दवाई दोगे तो बुखार उतर तो जाएगा, लेकिन थोड़े समय के लिए ही। फिर दोबारा हो जाएगा। इसके लिये बुखार रोकने की दवाई नहीं देनी। ऐसी दवाई देनी है जिससे कीले आसानी से निकल आएँ और यह दवाई हर उस बच्चे को देनी चाहिए जिसके दाँत निकल रहे हैं। इस दवा से आसानी से बिना तकलीफ के दाँत निकल आते हैं.... वरना तो किसी बच्चे को उल्टी, किसी को बुखार, किसी को दस्त तो किसी को फुंसियाँ हो जाती हैं और दाँत निकलने में तकलीफ होती है। उसने दवाई दी और अपना मोबाइल नंबर भी दिया। कहा कि कोई परेशानी हो तो मुझे फोन कर लेना। यह भी कहा कि बुखार होने पर टेंशन नहीं करनी। बस दवाई समय से देनी है और लगातार ठण्डे पानी की पट्टियाँ करनी हैं। उसका तरीका भी बताया कि ऐसे नहीं रखनी जैसे फिल्मों में दिखाते हैं। ठंडे पानी में कपड़ा भिगो-भिगोकर सिर, माथा, गर्दन, कनपटी पर लगातार फिराना है। केवल माथे पर पट्टी रखने से कुछ नहीं होने वाला। ठण्डे पानी में तौलिया भिगोकर बार-बार ऐसे ही रिपीट करना है। उसे कहते हैं ठंडे पानी की पट्टी करना। यदि बुखार ज्यादा हो तो बेड पर एक मोमजामा बिछाकर उस पर एक गीली चादर बिछानी है। पंखा चला देना और बच्चे को बार बार जैसे मैंने बताया वैसे ही गीले कपड़े से माथा, कनपटी, खोपड़ी, गर्दन, हाथ पैर पोंछते रहना है। बार-बार कपड़ा गीला करना है। पानी गर्म हो जाए तो उस पानी को बदलना है। पानी ठंडा ही होना चाहिए। जब तक कि बुखार 100 तक न आ जाए, तब तक ऐसे ही करते रहना। ऐसे ही किया और शुक्र है उसका बुखार उतर गया। कीले भी आराम से निकल आए। उसके बाद तो आदत ही पड़ गई है। परिवार में सभी को यह बात बता रखी है। इसे देखकर लगता है कि एलोपैथी में इसका इलाज क्यों नहीं है? क्या उस डाक्टरों को यह नहीं मालूम कि बच्चे के दाँत या कीले निकलने में बुखार हो जाता है? उसने इतना डरा दिया कि यह तक कह दिया

कि बच्चे को मेनिनजाइटिस हो गया है और हमारी हालत पतली कर दी। 25000 रुपए का बिल बना दिया सो अलग। उस समय 25000 रुपए की कीमत आज के एक लाख के बराबर थी। बात पैसे की नहीं है, बात बेवकूफ बनाने की है। मजे की बात यह कि डिस्चार्ज समरी में मेनिनजाइटिस टेस्ट के बारे में कुछ लिखा ही नहीं था जबकि हमसे अलग से उस टैस्ट के पैसे वसूले थे।पहले तो हमें डिस्चार्ज समरी पढ़ने की फुर्सत ही नहीं मिली थी। बस यही खुशी थी कि बच्चे का बुखार उतर गया। जब दोबारा बुखार हुआ और होमियोपैथी दवा से ठीक हुआ, कीले आराम से निकल आए, दोबारा बुखार भी नहीं हुआ, तब डिस्चार्ज समरी पढ़ी। मन तो कर रहा था कि अस्पताल में जाकर लड़ा जाए, किन्तु चुप लगा गये।

होमियोपैथी डॉक्टर ने समझा भी दिया यह बुखार कीले निकलने के कारण हो रहा था और बुखार रोकने की दवाई के कारण बच्चे की यह हालत हो रही थी।

एलोपैथिक डॉक्टर कारण नहीं देख रहा था। कारण का निवारण भी नहीं कर रहा था। मैंने आज तक किसी ऐलोपैथी डॉ को कारण का निवारण करते नहीं देखा। केवल पेड़ के पत्तों पर पानी डालने से मतलब होता है ताकि लगे कि बीमार ठीक हो गया है। बीमारी की कारण खोजने की जहमत कौन उठाए।

--00--

भगवन तेरे खेल निराले (ऐलोपैथी का सितम)

दो- दो मौत एक साथ

आज भी उस दिन को याद करके कलेजा काँप जाता है। एक ही दिन में 2-2 मौत... सास भी और बहू भी। सभी सास के मरने की प्रतीक्षा कर रहे थे, यानी मेरी माँ... जो मुँह के कैंसर से पीड़ित थीं और बोलना, खाना, अपने नित्यकर्म करना तक छूट गया था। उन्होंने तो कभी पान तक नहीं खाया। साफ सफाई के प्रति बेहद जागरूक थीं। फिर ऐसा क्यों हुआ। बहुत सोचा तो कारण समझ में आया। दाढ़ निकलवाई थी, जो पूरी नहीं निकल पाई और हालात ऐसे हो गये। दो साल तक बीमारी से बड़ी हिम्मत से मुकाबला करती रहीं। यहाँ तक कि सितंबर 1997 में जब मेरी सास की मृत्यु हुई तो मेरी समधन मेरी बेटी से कह रही थीं, "तू तो कह रही थी कि तेरी नानी को कैंसर है, पर तेरी नानी की

शक्ल देखकर तो ऐसा बिल्कुल नहीं लगता। आवाज भी बिल्कुल ठीक है। इन्हें देखकर कौन कहेगा कि इन्हें कैंसर है।"

माँ एक्यूप्रेशर और शिवांबु चिकित्सा से इलाज कर रही थीं। जोधपुर में डॉक्टर आशा बिड़ला को घर बुलवाया था। मैंने ही बताया था क्योंकि एक बार दिल्ली में उनका कैम्प लगा था। आँखों देखी बात है कि उन्होंने ऐसे लाइलाज मरीजों को एक्येप्रैशर से ठीक किया, जिनका कई वर्षों से ऐलोपैथी में इलाज चल रहा था। एक मरीज दस साल से पागल था। जब उसे एक्यूप्रेशर करना शुरू किया तो उसने डॉक्टर के गाल पर कसकर तमाचा मारा जिसका निशान उनकी गाल पर 3 दिन तक रहा लोगों को गुस्सा आया।उस मरीज को थप्पड़ मारना चाहते थे, लेकिन डॉक्टर ने रोक दिया। कहा कि यह मरीज है। इसे क्या मालूम कि इसने ऐसा क्यों किया।अगले साल जब कैम्प लगा तो मैंने देखा कि वह मरीज बिल्कुल ठीक थी। एक मरीज को तो चार लोग चारपाई पर लेकर आए थे। वह एक कदम भी नहीं चल पाता था।उन्होंने तीन दिन के इलाज में उसे दौड़ने लायक कर दिया। जब उसने दूसरे दिन कदम बढ़ाए, तो खुद आश्चर्यचकित था। घर के लोग तो खुशी के मारे रोने लगे थे। एक अन्य मरीज को नामचीन डॉ ने पाँच ऑपरेशन बोले थे। वह बच्ची मात्र एक माह की थी। मलद्वार बंद था जिसकी वजह से पाँच ऑपरेशन होने थे। किसी ने सुझाव दिया कि उन्हें दिखा लो। उनका कहना था कि हमने बड़े नामचीन डॉ को दिखाया हुआ है। भला एक्यूप्रैशर में इसका इलाज कैसे संभव है। जिसका अपने मरीज की लाइलाज बिमारी ठीक हो गई थी उसी ने आग्रह किया कि एक बार दिखा लेने में क्या हर्ज़ है? उनसे इलाज कराया और पाँच दिन के इलाज से बच्ची ठीक हो गई। वो बच्ची, जिसे बार-बार एनिमा देना पड़ता था उसने पहले दिन ही अभी पूरा एक्यूप्रैशर किया भी नहीं था कि उसने पौट्टी कर दी। साफ करके लाये। दुबारा प्रैशर दिया तो फिर एकदम मल त्याग किया। घर जाकर भी कई दिनों का जमा मल निकलता रहा। पाँच दिन में बच्ची ठीक हो गई। एक माह के बच्चे के पाँच ऑपरेशन होने से बच गये। यह सब आँखों देखी बात है तो विश्वास कैसे नहीं होता। लोग तो उन्हें भगवान का रूप समझने लगे थे।

डॉ आशा बिड़ला सुबह एक घण्टा लोगों को एक्यूप्रैशर के प्वाइंट बताती थीं। बाकायदा बोर्ड पर नक्शा बनाकर बताती थीं कि किस बिमारी के लिये कहाँ कैसे और कितना प्रैशर देना है। उनसे सीखकर मैंने अपना माइग्रेन व बेटे की साइनस की बिमारी को ठीक किया। उन्होंने बड़े भाई को समझाया

कि शिवांबु चिकित्सा कैसे लेनी है। किस तरह से यूरिन को सुरक्षित रखने के लिए कपूर डालना है ताकि उसकी बास खत्म हो जाए। उससे पूरे शरीर की मालिश करनी है, क्योंकि कैंसर शरीर के किसी भी अंग पर हमला कर सकता है। ऐसा न हो, इसलिये पूरे शरीर पर इसकी मालिश करनी है।

जब तक ऐसा करते रहे, तब माँ बिल्कुल स्वस्थ रहीं। यहाँ तक कि अपनी मृत्यु से एक महीना पूर्व मेरे भाई का स्वेटर बुना था। सभी लोगों ने मेरे बड़े भाई का यह कह- कह कर दिमाग खराब कर दिया कि तू माँ का इलाज राजीव गांधी कैंसर हॉस्पिटल में क्यों नहीं करवा रहा? पैसे बचाने के लिए ना? जाने क्या उल्टे सीधे इलाज कर रहा है। हर सप्ताह माँ के सब दामाद शाम को ऑफिस से वापसी में पहले माँ को देखने जाते थे और भाई को मजबूर करते थे। आखिरकार परेशान होकर उसने राजीव गांधी कैंसर हॉस्पिटल में माँ का इलाज कराने का निर्णय लिया। बस... तभी से बेहद बीमार रहने लगीं। कीमोथैरेपी होती थी। उससे पहले उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी। आवाज में पूरा दम था लेकिन कीमोथैरेपी कराते-कराते हालात इतने बदतर हो गए कि खाना-पीना देखना और बोलना बिल्कुल छूट गया। अपने आपसे लैट्रिन बाथरूम तक नहीं जा पाती थीं। एक तरह से लाश के समान हो गई थीं। भाई ने सबके कहने पर यह निर्णय लिया था जिससे कल को कोई यह न कह दे कि पैसे बचाने के लिए हॉस्पिटल में अपनी माँ का इलाज नहीं कराया और माँ मर गई।

मैं उस दिन बहुत थकी हुई थी क्योंकि हॉस्पिटल में थी। बीस दिन बाद घर आई थी। बेटा हॉस्पिटल में दाखिल था। क्यों दाखिल था, यह बाद में।

माँ बहुत दिनों से बिस्तर में लाश के सामान पड़ी थीं। बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। सोचा जाकर उनको देख आऊँ। मन से आवाज़ आ रही थी कि शायद फिर उनको नहीं देख पाऊँगी। घर से बमुश्किल 5-6 कदम ही चली थी कि कोई बाइक पर आया। गले में पहनी चेन को खींचता ही चला गया। मैं भी दूर तक खिंचती चली गई क्योंकि चेन बहुत मोटी थी हालाँकि नकली थी। मोटी होने के कारण आसानी से नहीं टूटी। गर्दन पर दर्द तो बहुत हो रहा था, लगता था जैसे बहुत बड़ी खरोच आ गई हो। बिना इस बात की परवाह किए मैं बस स्टॉप पर चली गई। बस स्टॉप पर पहुँचकर गले पर हाथ लगाया तो हाथ खून से सन गया। घर वापस आई। रूई से खून साफ किया और दवाई लगाई। मरहम को अपने पर्स में रख लिया ताकि दोबारा लगा सकूँ। खून तो बहुत निकल रहा था लेकिन माँ को देखने का बहुत दिल कर रहा था। अंदर

से ही कुछ आवाज आ रही थी कि पता नहीं फिर उनको देख भी पाऊँगी या नहीं। यह भी सुनने में आया कि मंझली भाभी की बहुत दिनों से तबीयत खराब थी।वो भी 20 दिन से बिस्तर में थीं। उनको माइग्रेन का दर्द और उच्च रक्तचाप रहता था। जब मायके पहूँची तो देखा कि मेरी छोटी बहन भी वहाँ आई हुई थी। किसी ने कोई उपाय बताया था, जिससे कि शांति से माँ के प्राण निकल जाएँ क्योंकि उस समय वो मौत से बदतर जिंदगी जी रही थीं। मैंने अपने पिताजी से कहा, "पिताजी! अम्मा के सिरहाने बैठ जाओ और उनके सिर पर हाथ रख लो।" मेरे पिताजी कभी भी हमारे सामने माँ के पास नहीं बैठे थे। माँ बीमार होती थीं तो पिताजी की चारपाई भी बराबर में लग जाती थी। लेटे- लेटे हे राम! हे राम का जाप करते रहते थे मगर कभी पास में बैठकर दिलासा देने के लिये सिर पर हाथ नहीं रखा। छोटी बहन बोली, "अरे रानी जीजी! पिताजी आज तक कभी बैठे हैं, जो अब बैठेंगे?"

"कोई बात नहीं। आज तक नहीं बैठे, लेकिन अब माँ के आखिरी समय में बैठना पड़ेगा। बोल नहीं पा रहीं तो क्या हुआ, महसूस तो कर पा रही हैं। पिताजी सर पर हाथ रखेंगे तो उन्हें बहुत अच्छा लगेगा।"

पिताजी को जबर्दस्ती माँ के पास बैठकर सर पर हाथ रखने के लिए कहा। मंझली भाभी को सहारा देकर ऊपर ले गई ताकि आराम कर सकें। उनको उच्च रक्तचाप की भी शिकायत थी। ऊपर ले जाकर उनका टेंपरेचर देखा तो 96 था और उन्हें बहुत सर्दी लग रही थी जबकि जिसे उच्च रक्तचाप हो, उसे बहुत गर्मी लगती है। मुझे यह बात बेहद अजीब सी लगी। वहीं से पति को फोन किया और उन्हें सारी बात बताई। यह मेरे मायके आए। भाभी की हालत देखी तो मेरे बड़े भाई से बोले कि इन्हें अस्पताल में दाखिल कर दो क्योंकि यहाँ इन हालात में इनकी उचित देखभाल नहीं हो पाएगी। सभी इनकी अक्ल का लोहा मानते हैं इसलिए भाभी को अस्पताल ले जाने के लिए तैयार हो गए। बड़ी मुश्किल से सहारा देकर भाभी को नीचे उतारा गया। अग्रसेन हॉस्पिटल ले गए जो घर के पास ही था। डॉक्टर ने रक्तचाप दैखा जो बहुत ज्यादा था। मैंने कहा, **"डॉक्टर साहब रक्तचाप ज्यादा है तो फिर इन्हें सर्दी क्यों लग रही है? एक बार ब्रेन का सीटी स्कैन कर लीजिए क्योंकि 20 दिन से लगातार सिर में दर्द बना हुआ है।"**

डॉक्टर ने मुझे डाँट दिया। कहा कि- "आप डॉक्टर हैं या हम? हमें मत सिखाइए कि क्या करना है और क्या नहीं करना। आप यहाँ से बाहर जाकर बैठिए।"

भाभी को दाखिल कर लिया गया। मेरे भाई ने मुझसे कहा, "जीजी! तुम अस्पताल में रुक जाओ।"

"भाई! मुझे रुकने में कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन हर पत्नी चाहती है कि उसकी ऐसी हालत में पति उसके पास रहे। तू रुकेगा तो भाभी जल्दी ठीक हो जाएंगी।" शुक्र है कि थोड़ी सी ना नुकर करने के बाद मान गया।

रात को ढ़ाई बजे फोन की घण्टी बजी। समझ आ गया कि माँ नहीं रहीं। लेकिन जो सुना, सुनकर सन्न रह गये। कानों पर विश्वास नहीं हुआ। भाई का फोन था। उसने कहा, "जीजा जी! मनीषा गई।"

"कहाँ गई?"

"नहीं रही।"

"नहीं रही से क्या मतलब?"

"मतलब की मर गई। अब उसे एंबुलेंस में पता नहीं कहाँ लेकर गए हैं?"

दिल ने सोचा कि यह जीवन में आज तक कभी अस्पताल में नहीं रुका इसलिए ऐसी अजीब बातें बोल रहा है। जरूर अम्मा को ही कुछ हुआ है। हम दोनों टू व्हीलर पर चल पड़े। रास्ते में कुछ गुंडे पीछे पड़ गए जिनसे बड़ी मुश्किल से पिण्ड छुड़ाया। अस्पताल पहुँचे तो पता लगा कि वाकई भाभी का देहांत हो चुका था। लाश का पोस्टमार्टम होना बाकी था। सीटी स्कैन की रिपोर्ट में आया था कि उनका दिमाग अपनी जगह से सरका हुआ था। आश्चर्य हुआ। इतने बरसों से प्राइवेट डॉक्टर का इलाज हो रहा था। वह यह डायग्नोज़ क्यों नहीं कर पाया। शुक्र है कि अस्पताल में एडमिट थीं और सीटी स्कैन भी हो गया था तो पता लगा कि बीस दिन में बिस्तर में क्यों पड़ी थीं। उन्होंने तो कभी काम से जी नहीं चुराया था। थोड़ी सी मंदबुद्धि जरूर थीं। अस्पताल में दाखिल न करते तो यही सोचते कि उच्च रक्तचाप और माइग्रेन के कारण चल बसीं। जिंदगी भर के लिए ये बात भी रह जाती कि सास की सेवा करते-करते खुद के प्राण निकल गए।

तब तक भाई ने अन्य किसी को नहीं बताया था। केवल हमें फोन किया था। हमने फिर सुबह सबको फोन किया। सभी माँ की मौत का इंतजार कर ही रहे थे। फौरन अपने-अपने घर से चल पड़े। जिसका जो रिश्ता था, उसी संबोधन से बोलकर रो रहा था। हमारी बड़ी मामी तो बहुत ही रो रही थीं क्योंकि वो अपने सुख-दुख की सारी बातें माँ से सांझा करती थीं। बड़े मामा जी बहुत गुस्से वाले थे जिसकी वजह से वो बहुत दुःखी रहती थीं। अपने दिल का दर्द माँ से बाँट लिया करती थीं।

आते ही दहाड़ मारकर रोते हुए बोलीं, "हाय बीवी जी! भगवान ने आपके साथ ही ऐसा क्यों किया? आपने तो कभी किसी का बुरा नहीं सोचा।" छोटी बहन मर्मान्तक आवाज़ में रोते हुए बोली, "अरे पहले चादर हटाकर देख तो लो कि कौन है? और दहाड़ें मारकर रो पड़ी। **"ये अम्मा नहीं हैं।"**

चेहरे से कपड़ा हटाया तो सारे ही भौचक्के रह गए। तब तो किसी की रुलाई बंद होने का नाम ही नहीं ले रही थी। यह क्या हो गया? उनको तो ऐसी कोई बीमारी नहीं थी।

फिर ऐसा कैसे? अचानक से मृत्यु हो जाना.... सभी के दिल को धक्का लगा। सभी सोच-सोच कर हैरान थे कि यह क्या हुआ? दाह संस्कार करने के लिए अर्थी सज गई। एक नहीं, आधे घण्टे के अंतराल में दो दो अर्थी। पहले भाभी की, फिर माँ की। बाद में मेरी बड़ी बेटी ने बताया क्योंकि वह मां के सिरहाने अपनी गोद में उनका सिर रख कर बैठी हुई थी। जब भाभी की अर्थी को लेकर बाहर निकले तो मां के मुंह से शब्द निकले.... मममममममममनीईईईईईईईईईईषाआआआआआआ और गर्दन एक तरफ लुढ़क गई और दो बूँद अश्रु दोनों आँखों से ढुलक गये।

तब हम बाहर ही थे कि मेरी बेटी भाग कर बाहर आई। मेरी बड़ी भाभी को बताया कि अम्मा नहीं रहीं। उसी ने उनके आखिरी शब्द भी हमें बाद में बताए। भाभी एकदम अंदर भागीं। देखा कि माँ संसार को अलविदा कह चुकी थीं। जिस गद्दे पर पहले एक शव रखा था उसी गद्दे पर माँ के बिस्तर सहित उस पर लिटाया गया। कुछ देर पहले उनकी बहू की लाश वहाँ थी और अब उसी जगह सास की लाश। सभी पुरुष श्मशान घाट की ओर रवाना हो चुके थे। रिश्तेदारी में जो महिलाएं थीं, वे भी अपने घर जा चुकी थीं। उसके बाद घर में नहीं घुसते। मेरी देवरानियाँ भी जा चुकी थीं। अभी घर नहीं पहुंची थीं। उनके बच्चों को फोन किया कि मेरी मां नहीं रहीं। घर में जाते ही उन्हें खबर मिली और उल्टे पैरों सब दोबारा मेरे मायके के लिए चल पड़े। हमारी मामी घर में ही थीं। उन्होंने कहा कि पहले बड़े का संस्कार होगा। जल्दी से किसी को श्मशान की ओर भगाया गया। कुछ लोग लाश के साथ श्मशान घाट रुके और बाकी वापस आए। अब दूसरी (मां की) अर्थी सजनी शुरू हुई।

आज भी उस बात को याद करते हैं तो सोचते हैं कि माँ चाहे बोल नहीं पा रही थी लेकिन सुन पा रही थीं, तभी तो उन्होंने रोते हुए यह शब्द बोले और प्राण त्याग दिए। भगवान किसी को भी ऐसे दिन न दिखाए।

--00--

ऐलोपैथी का सितम (दूसरी कड़ी)

मेरे बेटे को बुरी तरह नकसीर शुरू हो गई। घर में सभी उपाय आजमा लिये। सिर को थोड़ा नीचे भी किया। पानी भी डालते रहे। मिट्टी भी सुँघाई लेकिन कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार उसे सफदरजंग हॉस्पिटल लेकर भागे। पति को हमें छोड़ कर मजबूरी में आना पड़ा क्योंकि उसी दिन मेरी देवरानी के मकान का मुहूर्त था। दाखिल करने के बाद डॉक्टर ने रक्तचाप देखा। घबराकर एकदम बोले, "सिस्टर जल्दी गोली लाओ। मरीज को हाई बीपी है।" सिस्टर दौड़कर गोली लेकर आई और मेरे बेटे को खिला दी। उसके बाद उसे वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया। दोनों नथुनों में रुई ठूँस दी गई। अब नकसीर बाहर नहीं बह रही थी लेकिन गले में जा रही थी और वह बड़ा परेशान हो रहा था। बिस्तर से उठता था तो फिर नकसीर चालू हो जाती थी। अगले दिन बीपी चेक किया फिर डॉक्टर ने घबराकर बड़ी जोर से सिस्टर को आवाज लगाई, "सिस्टर गोली लाओ। मरीज का बी.पी बहुत हाई है। सिस्टर दौड़कर गोली लेकर आई और बेटे के मुँह में ठूँस दी। मैंने फौरन बेटे के मुँह से गोली निकाली और कहा, "डॉक्टर साहब हो सकता है आपका एपैरेटस खराब हो? मेरे बेटे को आज तक कभी हाई बी.पी नहीं हुआ।"

"डॉक्टर आप हैं या हम? मैंने कहा डॉक्टर तो आप ही हैं लेकिन एक बात बता दूँ कि यदि मेरे बेटे को कुछ भी हो गया तो मैं सब को कच्चा चबा जाऊँगी।आप एक बार दूसरा ऐपैरेटस मँगा कर इसका बी.पी क्यों नहीं चेक कर लेते।"

"आपको विश्वास नहीं है तो इमरजेंसी में चेक करा लो।"

"स्ट्रेचर का इंतजाम कर दो।"

"कोई स्ट्रेचर नहीं है।"

"तो व्हीलचेयर का इंतजाम कर दो।"

"कोई व्हीलचेयर भी नहीं है।"

आखिर मैं बेटे को पैदल चला कर इमरजेंसी तक ले गई। बी.पी चेक कराया और पर्चे पर लिखवा कर लाई। डॉक्टर को दिखाया और कहा कि आपका ऐपरेटस इतना हाई बीपी दिखा रहा है, जबकि अभी मैं इसको पैदल चलाकर ले गई हूँ तब भी नार्मल है। नकसीर किसी भी तरह बंद नहीं हो रही थी, इसलिये दाखिल रहना जरूरी था। पूरे 5 दिन बीत चुके थे लेकिन नकसीर में कोई आराम नहीं था। वहां ऐसे कुछ अन्य मरीज भी थे जो 3 महीने से

इसी बीमारी की वजह से दाखिल थे। डॉ के अनुसार बिस्तर में लेटे रहना ही एकमात्र उपाय था। जब मैंने देखा कि पाँच दिन में भी कोई फर्क नहीं पड़ा तो आखिरकार मैं घर आई। स्वदेशी चिकित्सा सार की किताब में नकसीर का इलाज पढ़ा। डॉ आशा बिड़ला को फोन किया। उन्हें सारी बात बताई और उनसे नकसीर रोकने के एक्यूप्रेशर पॉइंट पूछे। उन्होंने एक्यूप्रैशर प्वाइंट बताने के साथ-साथ शिवाम्बु चिकित्सा करने के लिये भी कहा। एक शीशी में अपना थोड़ा सा बीच के यूरिन की नाक में दो-दो बूँद डालने की सलाह दी। यह भी कहा कि शुरू और आखिर का नहीं, थोड़ा यूरिन पास करने के बाद फिर शीशी में डालना है। आखिर का यूरिन भी नहीं डालना। मुझे शिवाम्बु चिकित्सा की जानकारी थी, उस पर विश्वास था, अतः उनकी बात सहर्ष मान ली। घर से एक ड्रापर वाली शीशी ले गई। स्वदेशी चिकित्सा सार में लिखा था कि रात को मुल्तानी मिट्टी भी एक गिलास पानी में भिगो दो। सुबह तक मुल्तानी मिट्टी नीचे बैठ जाएगी। वो पानी खाली पेट देना है। उसका पानी नकसीर में आराम करता है। बाजार से मुल्तानी मिट्टी खरीद कर ले गई। पति को कुछ नहीं बताया क्योंकि इन्हें ऐसी बातों में कम यकीन है। इन्हें एलोपैथी में ज्यादा यकीन है। अस्पताल में 10 दिन तक मैं ही दिन रात रही क्योंकि बेटा मेरे साथ ज्यादा कंफर्टेबल था। रोज रात को मुल्तानी मिट्टी भिगो देती थी और सुबह उसका पानी देती थी। दिन में 5-6 बार यूरीन की दो-दो बूँद नाक में डालती थी। डॉक्टर को बताने की मैंने कोई जरूरत नहीं समझी। बेटे को भी कह दिया कि किसी को बताने की कोई जरूरत नहीं है। चुप करके जब बाथरूम जाता है तो ये शीशी ले जाना। जब डॉक्टर को यह पता लग गया कि उनका ऐपरेटस खराब है फिर वो दूसरे वार्ड से ऐपरेटस मँगा कर चेक करते थे। कितनी मरीज तो ऐसे थे जो यह कहते थे कि हम खिड़की में से छलांग लगा देंगे। लेटे लेटे तंग आ गए हैं। बीमारी है कि कंट्रोल होने का नाम नहीं लेती। 10 दिन बाद बेटे को छुट्टी मिली। उसका एच बी केवल 7 ग्राम रह गया था जो कि बहुत कम था। मुझे मालूम था कि छतरपुर आद्या कात्यायिनी मंदिर के पास एक अध्यात्म साधना केंद्र है। कभी मैंने एक सप्ताह के कैम्प में रंग चिकित्सा सीखी थी। पति के विरोध के बावजूद मैं उसे वहां लेकर गई। 10 दिन वहाँ रहे। वहाँ उन्होंने बेटे को दूब का जूस दिया। दूब को अच्छी तरह धोकर, हाथ से ही टुकड़े करके मिक्सी में पानी डालकर पीसा और छानकर पिलाया। मुझे भी यह बता दिया कि यदि यह तीन साल केवल 7 दिन कर लोगे तो कभी नकसीर नहीं होगी। सदा के लिए यह समस्या खत्म हो जाएगी।

दूब का जूस रोजाना देना है क्योंकि इससे खून बनता है। यह बहुत ठण्डा होता है। सर्दियों में इसमें काली मिर्च डाल कर देना है। गर्मियों में वैसे ही दे सकते हो। जिसका भी एच. बी कम हो, उसके लिए यह बहुत कारगर उपाय है। गेहूँ के जवारे का रस भी दे सकते हो। उससे भी खून बढ़ता है।

बाद में तो मैंने घर में आकर 10 गमले रख लिए थे। उन्होंने बताया था... हर रोज एक गमले में गेहूँ के जवारे बोने हैं। दूसरे दिन दूसरे में, तीसरे दिन तीसरे में और इसी तरह क्रमवार दसवें दिन दसवें में। सबसे पहले वाले गमले में दसवें दिन जौ अच्छी तरह से अंकुरित हो चुके होंगे। उन्हें जड़ समेत निकालकर सबसे नीचे से थोड़ा काट देना क्योंकि उनमें बहुत मिट्टी लगी हुई होती है। फिर अच्छी तरह धोकर, पीसकर, छानकर ...कोई भी पिएगा तो उससे खून बनेगा। उसी गमले में फिर दोबारा जौ बो दो। अगले दिन दूसरे गमले के तोड़ो और क्रमवार ऐसे ही करो। मैंने देखा कि वाकई जवारे का रस पिलाने से मेरे बेटे का एच.बी, जो केवल 7 ग्राम रह गया था, वह 15 ग्राम हो गया था।

बीमारियाँ भी बहुत कुछ सिखा देती हैं। जिन्दगी में मुसीबतों ने बहुत कुछ सिखाया।

--00--

यादों के झरोखे से (1965 की दास्तान)

1965 में भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ा हुआ था। मैं उन दिनों उषा सिलाई स्कूल में सिलाई कढ़ाई की ट्रेनिंग ले रही थी। उस समय श्री लाल बहादुर शास्त्री जी देश के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने देश के लोगों में देशभक्ति का ऐसा जज्बा पैदा कर दिया था कि महिलाओं ने अपने आभूषण तक देश की रक्षा के लिए दे दिए थे। मुझमें बचपन से ही देशभक्ति का जज्बा कूट- कूट कर भरा हुआ था। मैंने सोचा कि हमें भी देश के लिए कुछ करना चाहिए। पर क्या??

चाह हो तो राह भी मिल ही जाती है। मैंने अपनी प्रिंसिपल से कहा कि मैडम क्यों न हम स्कूल में कपड़ों की एग्ज़ीबिशन लगायें। उससे जो पैसा आएगा, वह हम प्रधानमंत्री राहत कोष में जमा करा देंगे। मैडम मुझ पर ज्यादा ही कृपालु रहती थीं और मुझे बुद्धिमान भी समझती थीं क्योंकि जो ड्राफ्टिंग अन्य छात्राओं को सप्ताह में केवल एक बार देती थीं और एक सप्ताह में भी वे लोग उस डिज़ाइन को पूरा नहीं कर पाती थीं,मैं अगले दिन ही पूरा

करके ले जाती थी। मान लो छह तरह के फ्रॉक होते हैं तो कायदे से 6 हफ्ते में सिखाएँगे, किंतु मैं अगले दिन ही फ्रॉक हो या सूट,कुर्ता हो या पाजामा, पैण्ट हो या कमीज, या अलग-अलग तरह के ब्लाऊज़... अगले दिन ही पूरा करके ले जाती थी और वह उसमें कोई कमी भी नहीं निकाल पाती थीं। पाइपिंग एकदम सफाई से लगी होती थी। एकदम बारीक होती थी। काज भी एकदम सफाई से बने होते थे इसलिए मजबूरन उन्हें अगले दिन दूसरी ड्राफ्टिंग सिखानी ही पड़ती थी और शायद इसीलिए उनकी नजरों में मैं श्रेष्ठ शिक्षार्थियों की श्रेणी में आती थी। मैडम को मेरी बात पर पूरा यकीन था। लेकिन यह होगा कैसे?? यह सवाल उनके मन में था। मैंने कहा,

"मैडम आप केवल अनुमति दे दें। बाकी सब कुछ मुझ पर छोड़ दें। बस इन छात्राओं से केवल इतना कह दें कि अपने घर से जितने भी छोटे बड़े कपड़ों के टुकड़े हैं, लेकर आएँ।" उन्होंने सबको वैसा ही आदेश दे दिया। वैसे भी वहाँ पास में ही बाजार था, जहाँ कपड़ों की ढ़ेरों दुकाने थीं। सिलाई सीखने वाली लड़कियाँ वहीं से छोटे कपड़े बनाने के लिये कटपीस खरीदती थीं।

अनुमति मिलने के बाद मैंने योजनानुसार काम करना शुरू किया। चार्ट पेपर काटकर छोटे-छोटे टिकट बनाए और उन पर ₹ 10 दाम लिखा। स्कूल के आस-पास बहुत सारी दुकानें और शोरूम थे। सबको यह कहकर टिकट दिए कि 15 दिन बाद हम अपने स्कूल में सिले हुए कपड़ों की प्रदर्शनी लगाएँगे और उससे जो पैसा इकट्ठा होगा, वह हम प्रधानमंत्री राहत कोष में जमा करेंगे। आपसे उम्मीद करते हैं कि देश की खातिर ₹ 10 का टिकट तो आप लोग खरीद ही सकते हो। मात्र दो दिन में ₹ 1000 इकट्ठे हो गए और हमारी प्रिंसिपल ही एकमात्र ऐसी थीं जो किसी स्कूल की तरफ से प्रधानमंत्री राहत कोष में ₹ 1000 जमा करवा कर आईं थीं। उन दिनों ₹ 1000 की बहुत कीमत होती थी क्योंकि सोना भी केवल ₹ 110 तोला था। स्कूल में आकर उन्होंने मेरी पीठ थपथपाकर शाबाशी दी। अब उन्हें विश्वास हो गया कि मैं एग्ज़ीबिशन का काम भी कर पाऊँगी।

एक कपड़े वाले की दुकान से बहुत छोटे-छोटे बचे हुए टुकड़े भी मुफ्त में ले आई थी। उसको टिकट दिया था और कहा था कि जो 20-30 इंच के कटपीस तुम्हारे किसी काम के नहीं हैं और जिन्हें तुम कौड़ियों के मोल बेचते हो, हम उनके कपड़े सिलकर प्रदर्शनी लगाएँगे और वह पैसा प्रधानमंत्री राहत कोष में देंगे। जो सैनिक देश की रक्षा के लिए... हमारी रक्षा के लिए... अपने प्राण हथेली पर रखकर बैठे हैं, हमारा भी फ़र्ज है कि हम उनके लिए कुछ

करें। आप यह बेकार कपड़े हमें दे देंगे तो आपका कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि देश के लिए एक योगदान होगा। दुकानदारों ने काफी सारे कपड़े दे दिए। छात्राएँ भी अपने-अपने घर से कपड़े ले आईं।उन कपड़ों से मैंने ए लाइन, अंब्रेला कट, कोट फ्रॉक, चुन्नट वाली फ्रॉक रोम्पर, झबले, टी शर्ट, छोटी निक्कर, बिब वाली स्कर्ट... रंग बिरंगे कपड़े लगाकर कढ़ाई करके बनाईं। एक दिन में तीन चार कपड़े आराम से पूरे हो जाते थे। स्कूल टाइम में सैनिकों की वर्दी सिलती थी।

घर में आज तक किसी को इस बात का पता नहीं है कि मैंने यह सब कुछ किया। यदि पता लग जाता तो मैं किसी भी दुकान पर टिकट देकर ₹ 1000 इकट्ठे नहीं कर पाती और न ही प्रदर्शनी लगा पाती।

जितने कपड़े हमारे पास थे, वह सब सिल गये तो बारी आई प्रदर्शनी लगाने के लिए बाकी सामान की। मसलन बाँधने के लिये रस्सी, लटकाने के लिए हैंगर, चिमटियाँ बल्ब व बैनर इत्यादि। स्कूल के बराबर में ही ड्राईक्लीनर की दुकान थी। उससे सैनिकों का और देश का हवाला देकर मुफ्त में हैंगर लेकर आई। पहले तो आनाकानी कर रहा था। उसको समझाया कि दो दिनों में तुम्हारे हैंगर यदि हम इस्तेमाल कर लेंगे तो न तो तुम्हारा कुछ बिगड़ेगा न ही इन हैंगरों का कुछ बिगड़ेगा, बल्कि किसी की जिंदगी जरूर संवर जाएगी। तुम्हारे हैंगर तीसरे दिन बाइज्जत वापस मिल जाएँगे। ऐसे ही एक दुकान से रस्सी, एक से चिमटियाँ, एक से बल्ब आदि लाकर ढंग से कपड़े सजाए। रविवार के दिन प्रदर्शनी लगाई। हालाँकि उस दिन बहुत बारिश हो रही थी। घर में हमने पहले से ही कह रखा था कि हमें रविवार को स्कूल जरूर जाना है क्योंकि हमारी मैडम ने हमारे द्वारा सिले गये कपड़ों की प्रदर्शनी लगवानी है।

हम रविवार को स्कूल गए। काफी दुकान वाले इस प्रदर्शनी में आये। जो कपड़े उन्हें अच्छे लगे वे मुंहमाँगे मूल्य पर उन्होंने खरीद लिए। एक ही दिन में ₹ 5000 इकट्ठे हो गए जिन्हें हमारी प्रिंसिपल दोबारा प्रधानमंत्री राहत कोष में जमा करा आईं। अगले दिन हमने... यानी कि मैंने हैंगर वाले के हैंगर, चिमटी वाले की चिमटियाँ, रस्सी वाले की रस्सी बल्ब वाले का बल्ब... आभार सहित सबका सामान वापस किया। सबका एक ही कहना था कि- "बिटिया तुमने हमारी आँखें खोल दीं। इसमें आभार किस बात का। तुम बच्ची होकर इतना कर सकती हो। आभार तो हमें तुम्हारा मानना चाहिए। तुमने हमें सिखाया कि सैनिक हमारी रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी लगा रहे हैं

तभी हम आराम से अपनी रोजी रोटी कमा पा रहे हैं। बिटिया धन्य है वह माँ-बाप जिन्होंने तुम्हें पैदा किया। भगवान तुम्हारे जैसी बेटी हर किसी को दे।"

मेरी प्रिंसिपल तो मुझसे इतनी खुश थीं कि उन्होंने स्कूल के हेड ऑफिस तक यह समाचार भेजा। उषा सिलाई स्कूल की उन दिनों कई ब्रांच थीं। जब परीक्षा पास करने के बाद सर्टिफिकेट दिए गए तो मेरा सर्टिफिकेट स्वयं ब्रांच मैनेजर ने आकर दिया। साथ-साथ यह भी कहा कि भविष्य में कभी स्कूल खोलने का इरादा हो तो हमसे संपर्क करना। हमें केवल यह बता देना कि कहाँ जगह खाली है। सारी व्यवस्था... जैसे मशीन वगैरह मुहैया कराना हमारा काम होगा। हम तुम्हें वेतन भी देंगे।

जब हम विकासपुरी में रहने आ गये थे तब संयोग से ब्रांच मैनेजर से भेंट हुई और वे मुझे पहचान गईं। उन्होंने हमारा घर देखा और कहा कि यहाँ तो तुम अच्छा भला स्कूल चला सकती हो। स्कूल चलाने के लिए जो भी सामान चाहिए, वह सब हम दे देंगे। मैं सरकारी नौकरी करती थी, इसलिए उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ थी। यहाँ मैं एक बात और बताना चाहूँगी। मैंने अपनी कविताओं के एकल संकलन 'काव्य मंजरी' में एक कविता लिखी है, जिसका शीर्षक है... **इसीलिए ही बोरी ओढ़ के आई हूँ**

हमारे स्कूल में एक लड़की बिल्कुल ऐसी थी।किसी ने कहा, इस पर कविता लिख दे। अब आप लोग सोचेंगे कि मुझसे ही ऐसा क्यों कहा। मुझसे इसलिए कहा गया क्योंकि मैं ज्यादातर बातें कविताओं की तुकबन्दी लगाकर ही करती थी। मैंने उस पर कविता लिख दी और सुना दी। सब हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। सप्ताह में एक दिन जरूर वही कविता सुनाने का आग्रह करते थे और इतना हँसते थे कि हँसते-हँसते हॉल में ही पसर जाते थे। मैं अपनी इच्छा से नहीं सुनाती थी। जब मैडम खुद कहती थीं कि सब लोग कह रहे हैं तो सुना दो, तभी सुनाती थी। सबको हँसी इसलिए आती थी क्योंकि उस कविता में उस छात्रा का वास्तविक चित्रण है। हमें भी इतनी समझ नहीं थी कि मैं उस पर कविता न लिखूँ। बस लिखना शुरू किया पर लेखनी कविता समाप्त होने पर ही रुकी।

--00--

यादों के झरोखे से (1965 की दास्तान)

अभी तक आपने पढ़ा कि 1965 में जब पाक ने भारत पर आक्रमण किया था तो हमने किस तरह से एग्जीबिशन लगाकर प्रधानमंत्री राहत कोष में पैसा जमा किया था। अब आगे-

उन्हीं दिनों उसी स्कूल में सिलाई सीखने वाली एक लड़की पर कविता लिखी थी। सुनकर सब लोट-पोट हो जाते थे। उस लड़की के बारे में पहले थोड़ा सा लिख दूँ, तभी आपको कविता पढ़ने में मजा आएगा। विचित्र सी आदत थी उस लड़की की। एक बड़े से थैले में कपड़े लेकर अभी तकआती थी। चप्पल हाथ में पकड़ी होती थी। उस झोले को कंधे के पीछे लटकाती थी। चप्पल भी हाथ में पकड़ी होती थी और थैले को झुलाती हुई चलती थी। एक हाथ से सलवार को ऊपर-नीचे करती रहती थी। उसकी इन हरकतों को सभी देखते थे। पता लगा कि मुझे कविता लिखने का भी शौक है तो मुझसे कविता लिखने का आग्रह किया। बस लिख दी कविता। उसका हूबहू वर्णन कर दिया। सब आए दिन उस कविता को सुनाने का आग्रह करते थे और सुनकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे। जिस दिन भी मैं कविता सुनाती थी वो मुझसे कहती थी कि मैं तुझसे नहीं बोलूँगी, जबकि आए दिन कभी कहती थी कि बस जरा पैण्ट में चेन लगाना सिखा दे, उसके बाद तुझसे बात नहीं करूँगी। कभी कमीज का कॉलर लगाना सीखती थी और यही बात दोहराती थी। रोज कुट्टी और रोज अपने मतलब के लिये बोलचाल शुरू। उस पर जो कविता लिखी, उसका शीर्षक **(इसीलिए ही बोरी ओढ़ के आई हूँ आज स्कूल)**

सिर पर थैला, थैले पे चप्पल को चुन्नी से बाँधे,
इधर- उधर हिलता डुलता, सलवार हाथ से साधे।
कार्टून यह कौन चला जाता है? विस्मित होकर,
सोचा मैंने, अरे कौन यह बोझ गधे का ढ़ोकर?
उसके साथ एक लड़की थी बातें करती जाती,
बीच-बीच में कुछ बातों पर हँसी उन्हें थी आती।
लेकिन यह ही-ही-ही-ही-ही भला कौन है करता?
अरे! यह तो कार्टून, तालियाँ बजाकर हँसता।

ही-ही का क्या कारण मुँह में एक दाँत की जोड़ी।
अड़ी हुई दरवाजा बन कर, थी वह बड़ी निगोड़ी।

जब हँसती थी, हँसी अरे दरवाजे से अड़ जाती,
आधी ही बाहर आ जाती, आधी अंदर रह जाती।
उसकी वह ही- ही- ही- ही- ही लगी मुझे परिचित सी,
दो गज का थैला और लौंग नाक की स्वर्णखचित सी।
अरे! यह लड़की तो पहले मेरे संग पढ़ती थी।
ताली बजा- बजा हँसती थी, सारा दिन लड़ती थी।
कभी हँसी की बात हो अगर, पीछे को झुक जाती,
आगे लचका खा ही-ही कर ताली खूब बजाती।
एक बड़ी सी बोरी में कई कपड़े थी भर लाती,
लेकिन इतने कपड़ों में से क्या कुछ थी सी पाती?

"इस बोरी में अरी भला कितना कूड़ा भरती है?
कंधे पर इसको लादे, क्या शर्म नहीं लगती है?"
पूछा उससे इक लड़की ने, उससे वह यूँ बोली,
जैसे फटा बाँस बोला हो, छूटी बम की गोली।
"बोरा है यह नहीं, अरे यह तो थैला है।
बोरा सा कहती है, क्योंकि मटमैला है।
इसमें कपड़े हैं मूर्खा,नहीं कूड़ा है।"
"क्या? इसमें खाने के लिए लाई पूड़ा है?"
"इसमें पूड़ा नहीं, ही-ही इसमें कमीज है।
क्या बतलाएँ हमें नहीं इतनी तमीज है।
तुम ही होशियार हो, सबकी हँसी उड़ाते,
हमको बुद्धू समझ, तुम सभी हो मुस्काते।
हम कपड़ा लाते हैं,तुम कूड़ा बतलाते,
इस सुंदर थैले को तुम बोरा बतलाते।

कितना काम रोज मुझको करना पड़ता है,
इसीलिए ही मुझे यहाँ लाना पड़ता है।
इसमें एक बुश्शर्ट है, उसमें लगाऊँगी अभी जेब,
सीना है कुर्ता, इसका कपड़ा है देख तंजेब।
एक कमीज में अभी मुझे करने हैं बटन और काज,
धनिया साफ मुझे करना है, घर जा करके आज।"

"तू सचमुच ही बड़ी कमेरी, करती कितना काम,

मूर्ख हमीं हैं, जो सारा दिन करते हैं आराम।
पैरों पर सलवार चढ़ाना भी तो है एक काम।"
"ही- ही, मजेदार तू, हँसी दिला देती नादान।"
ये जूड़े वाली थी स्कूल में सबकी हास्य पात्रा,
ही- ही थी मशहूर, वस्त्र ढ़ीले यह पिंगलगात्रा।
इक दिन की है बात, अरे जो की है बड़ी सुहानी,
यदि देख लेते, मुश्किल हो जाती हँसी दबानी।
एक दिन बरखा बहुत हो रही, घन था जल से पूर,
किंतु हमें तो मजबूरन जाना था स्कूल जरूर।
सभी लड़कियाँ स्कूल में उस दिन छाता लेकर आईं,
लेकिन पिंगलगात्रा तो बोरी ओढ़ के आई।

"अरी बता क्या तेरे पास नहीं है कोई छतरी?"
"ही- ही ऐसी बात नहीं, छतरी तो हैं बहुतेरी,
लेकिन कल मैं स्कूल में अपनी छतरी गई थी भूल,
इसीलिए ही बोरी ओढ़ के, आई हूँ आज स्कूल।"
ऊँची सी सलवार और ढीला सा जम्पर,
फैले बाल, जनु काली चाहती हो खप्पर।
थके अनोखा वेश, ही-ही-ही लिखते-लिखते।
बंद कर रहे लिखना, उनका बोरा दिखते-दिखते।

--00--

जब पार्क में घूमने गई और घर का रास्ता भूल गई थी।

मेरे घर के बिल्कुल साथ ही बहुत बड़ा डिस्ट्रिक्ट पार्क है। एक बार मैंने सोचा कि थोड़ा पार्क में चक्कर लगा लूँ। सर्दियों के दिन थे। जाने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन फिर सोचा कि घर के पास ही तो है। थोड़ी सी धूप भी खा लूँगी, थोड़ा पार्क में घूमना हो जाएगा क्योंकि उन दिनों घुटनों का ऑपरेशन हुआ था। डॉक्टर ने कहा था जितना चलोगे, उतना ज्यादा अच्छा है। उससे घुटने मजबूत होंगे।

शुक्र है कि मैंने जोर से आवाज लगाई थी कि मैं पार्क में घूमने जा रही हूँ। बेटा ऊपर पहली मंजिल पर था पति ऑफिस में अपना काम कर रहे थे। मैंने जोर से आवाज लगाई कि मैं पार्क में घूमने जा रही हूँ। 10 कदम की दूरी पर मेरे घर के पास ही है। मैं बमुश्किल बीस कदम ही चली थी कि

चलना मुश्किल हो गया। मैं पार्क में बेंच पर बैठ गई। लगता है कि दौरा पड़ गया होगा क्योंकि मुझे इस तरह के दौरे पड़ते हैं तो सामने वाले को भी पता नहीं लग सकता कि मुझे दौरा पड़ा है। जब ऐसा होता है तब मेरी आंखें ब्लिंक करने लगती हैं या मेरी आवाज गुम हो जाती है। उस वक्त मेरी याददाश्त भी चली जाती है।

जब मैं बेंच से उठी तो मुझे कुछ भी याद नहीं था। मैं हैरानी से देख रही थी कि यह कौन सा शहर है। मैं तो अपने घर में सो रही थी, मुझे यहाँ कौन फेंक गया। मेरे घर वालों को कैसे पता लगेगा कि मैं कौन से शहर में हूँ। वह तो मुझे यहाँ वहाँ ढूँढ रहे होंगे। मैं अपनी छड़ी लेकर रोते-रोते पार्क में भटकती रही यह देखने के लिए कि कहीं कोई बोर्ड लगा हुआ नजर आ जाए, जिससे पता लग सके कि यह कौन सा शहर है। लेकिन कहीं कोई बोर्ड नहीं था। बुरी तेरा रोना निकल आया। इसी तरह भटकते-भटकते काफी देर हो गई।वो तो शुक्र है कि मुझे कहीं भी जाने पर ज्यादा वक्त लग जाता है तो घर में सबको यही चिंता हो जाती है कि कहीं दौरा तो नहीं पड़ गया। यही सोचकर मेरा बेटा मुझे ढूँढता हुआ पार्क में आया। दूर से उसको आता देखा तो जान में जान आई। उसके गले से चिपट कर रोते-रोते पूछने लगी, "तुझे कैसे पता लगा कि मैं शहर में हूँ, तुझे कैसे पता लगा?" यही बात लगातार बिना रुके रोते-रोते बोलती रही। वो मुझे दिलाता देता हुआ बोला, "माते शांत, माते शांत। घर चलो। "मुझे सारा दिन यह याद नहीं आया कि मैं घर में कह कर आई थी कि मैं पार्क में घूमने जा रही हूँ। बस यही सोचती रही कि मुझे पार्क में कौन फेंक कर चला गया? मैं तो घर में सो रही थी। यही बात बार-बार बेटे से भी कह रही थी। आधी रात को मुझे यह बात याद आई कि मैं घर में कह कर आई थी कि मैं पार्क में घूमने जा रही हूँ। बस जी, उसके बाद से तो मेरे अकेले जाने पर पाबंदी लगा दी गई क्योंकि बेटे ने जरूर मेरी बहू को बता दिया होगा और उसने अपने ससुर को बता दिया होगा।

--00--

यादों के झरोखों से

पति और मैं बेडरूम में बैठे हुए थे। इतने में इनसे मिलने कोई आया। ये उठकर ड्राइंगरूम में आए। मैं भी बैडरूम का पंखा, लाइट, कूलर, टी.वी बंद करके ड्राइंगरूम में आ गई। आधे घंटे बाद वह चला गया। ये बैडरूम में गए और पंखा व टी. वी बंद देखकर बड़ी बुरी तरह गरजे -

"ये पंखा और टी वी किसने बंद किया है?"

"मैंने" धीमी किन्तु गुस्से वाली आवाज़ में मैंने उत्तर दिया। पंखा, लाइट, टी.वी व कूलर चलाया। मुझे बैंक जाना था। गुस्से में पलंग की साइड में रखा हुआ अपना बैग खींचा जो बुरी तरह फट भी गया। मुझमें भी इनके इतने तल्ख तेवर से इतना गुस्सा था कि मैं उस फटे हुए बैग को ही लेकर बहुत गुस्से में अपनी छड़ी लेकर घर से बाहर चली गई। बैंक में जाकर जो काम करना था, वह किया।

मुझे इतना याद था कि मैंने बैंक जाने के लिए सड़क पार की थी इसलिए बैंक से बाहर आकर भी मैंने सड़क पार की। उसके बाद मुझे यह समझ नहीं आ रहा था कि मुझे घर जाने के लिए दाईं तरफ मुड़ना है या बाई तरफ। पाँच मिनट इसी पशोपेश में पड़ी रही। फिर मैंने सोचा कि चौधरी डेयरी के पास से जाती हूँ। उधर मुड़ गई, किंतु काफी दूर जाकर पता लगा कि मैं गलत दिशा की तरफ मुड़ गई हूँ। दोबारा दिमाग लगाया कि मैं घर की गली पार करके किस तरफ गई थी। घर की गली पार करके मैंने सड़क पार की थी और बैंक की तरफ गई थी। बैंक से बाहर आकर मुझे पक्का याद था कि मैंने फिर सड़क पार की थी। "तो मेरे घर की गली क्यों नहीं मिल रही है"?

फिर मैंने दूसरी दिशा की तरफ बढ़ना शुरू किया। भटकते-भटकते मुझे अपने घर की गली मिल गई, तब जाकर साँस में साँस आई और मैं घर आ गई।

इनको सुबह से ही मालूम था कि मुझे बैंक जाना है, क्योंकि मैंने ही कहा था कि मैं बैंक के काम खुद करना चाहती हूँ जिससे कि मेरा आत्मविश्वास बढ़े। इन्हें मालूम है कि सड़क पार करते समय मेरा संतुलन बिगड़ जाता है इसलिए इन्होंने कहा था कि किसी को साथ ले जाना लेकिन मैं गुस्से में भरकर अकेली ही चली गई थी। इन्होंने अपनी बहू से बैंक में मेरे पास जाने के लिए कहा। वह बैंक पहुँच गई।

"तू जा। मैं अपने आप आ जाऊँगी"।

उसने कहा- "ठीक है। मुझे मार्केट में दस मिनट का काम है। मैं करके आती हूँ।"

जब वह काम करके वापस आई तो मैं बैंक में नहीं थी। उसने सोचा कि मैं घर वापस चली गई हूँ अतः वह भी घर वापस आ गई। उसके घर आने के बीस मिनट बाद तक भी जब मैं घर नहीं आई तो इन्होंने खुद फोन न करके बहू से फोन करवाया। मैं मोबाइल साथ ले गई थी। तब तक मुझे अपने घर की गली भी मिल गई थी इसलिए मैंने उसे बता दिया कि घर की गली में ही हूँ। पाँच मिनट में पहुँच रही हूँ। घर आकर उसने पूछा कि इतनी देर

कैसे लग गई? मैंने सारी बातें न बताकर केवल इतना कहा कि रास्ता भूल गई थी इसलिये आने में देर लग गई।

बहू ने सारी बात बेटे को बताई। वह घूमता फिरता मेरे पास आया और मजे लेता हुआ मुझसे पूछने लगा

"लड़ाई हो गई थी क्या?"

"कोई नई बात है क्या?" मैंने कहा

"तुम अकेली कहीं भी क्यों जाती हो?"

"हमेशा सहारों के सहारे जीना कोई अच्छी बात नहीं है। इंसान को कोशिश करनी चाहिए कि वह अपने बलबूते पर जिए।" मैंने कहा "हर वक्त टुक्कड-फुक्कड़ ठीक करती रहती हो। कोई ढंग का काम क्यों नहीं करतीं? यह कचरा वचरा घर से बाहर फेंको"

"ये कचरा वचरा बाहर फेंको" जैसे उसके शब्दों ने मुझमें ऐसा जोश पैदा कर दिया कि मैं बयान नहीं कर सकती। जब अन्ना हजारे जी ने आंदोलन किया था, मेरी बड़ी इच्छा थी उसमें जाने की।

जब चार जून को रामदेव जी ने आंदोलन किया था, तब भी मेरी तीव्र इच्छा थी उस का हिस्सा बनने की। अन्ना जी ने दोबारा आंदोलन किया और रामदेव जी ने भी नौ अगस्त 2012 को दोबारा आंदोलन किया तो मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं उसमें जाऊँ लेकिन अकेले जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी। किंतु बेटे की कचरा शब्द ने बड़ी हिम्मत पैदा की। मैंने सोचा कि बाकी कचरे को ढूँढकर (कपड़े) निकालने में तो समय लगेगा। इस घर में सबसे बड़ा कचरा तो मैं हूँ। मौत तो एक दिन आनी ही है। इससे अच्छी मौत क्या होगी जो इस आंदोलन के दौरान होगी। ऐसी वैसी मौत को गले लगाने से तो वो मौत ज्यादा बेहतर है जो देश की बेहतरी में योगदान देकर मिले। वैसे भी मेरा हमेशा यह मानना है कि सौ साल की अपमानजनक जिंदगी जीने की बजाए सौ मिनट की सम्मानजनक जिंदगी ज्यादा अच्छी है। हाँ! यदि अपमान का जहर देश हित में पीना पड़े तो मैं हमेशा यह अपमान पीने को तैयार हूँ। परिवार के प्रति, समाज के प्रति, अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने की खातिर पीना पड़े, तो भी तैयार हूँ।

उन दिनों मैंने फुल टाइम मेड लगाई हुई थी क्योंकि दोनों घुटनों का ऑपरेशन हुआ था। पूरे घुटने बदले गये थे। घुटनों से छह इंच नीचे व छह इंच ऊपर तक टाँकों के निशान आज तक मौजूद हैं।

मेड अकल से पूरी ढक्कन थी। छोटे-छोटे कामों के लिए भी बार-बार कहना पड़ता था। उसका दिमाग खाने में और टी.वी. देखने में ही रहता था। उसके कारण मैं टी.वी. चलाती ही नहीं थी। कभी अच्छा सीरियल आए तो चलाती

थी या पोता कार्टून फिल्म देखता था तब और वह भी दरवाजे पर पर्दा डालकर। लेकिन मेड पर्दे को उंगली से हल्का सा सरकाकर बाहर खड़े- खड़े टी वी देखती रहती थी। हमारे उठते ही दौड़कर रसोई में आ जाती थी। पति के ऑफिस का टी. वी तो पूरा दिन चलता था। रसोई के बाहर खड़े होकर आराम से नजर आता था। ऊपर नीचे से कोई उसे आवाज़ दे तो सुनाई दे जाती थी। पति बड़े खुश होते थे कि सुनीता एक आवाज पर दौड़ी आती है। उन्हें क्या पता कि सारा काम छोड़ कर वहीं खड़ी टी. वी देख रही है।

खैर ये सब बेकार की बातें हैं। मूल मुद्दे पर आती हूँ। मुझे मालूम था कि बहू बारह बजे से पहले नीचे नहीं आएगी क्योंकि ऊपर खाना वही बनाती थी। मेड तो नीचे पका पकाया प्लेट में लगा हुआ खाना लेकर आती थी। सफाई बर्तनों के लिये बहू ने ऊपर अलग मेड लगाई हुई थी। इसलिए ऊपर काम खत्म होने के बाद आकर मेरा हाल-चाल पूछती थी। पति भी ऑफिस में बैठकर काम करते थे। वह भी बारह बजे के आसपास उठते थे। बस मैंने अवसर का लाभ उठाया। एक डायरी हमेशा अपने सिरहाने रखती हूँ। जिसमें रोज के काम लिखती रहती हूँ। उसी डायरी में लिखा कि मैं रामलीला मैदान जा रही हूँ और मेड को कह दिया भाभी या अंकल मेरे बारे में पूछें तो मैंने लिख दिया है, यह उनको दिखा दियो और मैं यह कहकर, खाना खाकर घर से चली गई। बारह बजे बहू ऊपर से उतरकर आई और पूछा मम्मी कहाँ हैं? मेड ने मेरा लिखा हुआ कागज दिखा दिया। बहू ने इन्हें बताया। कोई यह विश्वास करने को तैयार नहीं था कि मैं ऐसी अवस्था में, (तीन महीने पहले दोनों घुटने पूरे बदले गये थे) तीस किलोमीटर दूर रामलीला मैदान जा सकती हूँ। बस जी, फिर तो मेरी खोज शुरू हो गई। तब तक मैंने मोबाइल भी स्विच ऑफ कर दिया था। बहू और इन्होंने बार-बार मुझे फोन किया। फिर बहू पार्क के भी तीन चार चक्कर लगाकर मुझे देख आई। पार्क में इसलिए देखकर आई क्योंकि एक बार मैं पार्क में भी रास्ता भूल गई थी। यह बात बाद में बताऊँगी। लंबी दास्तान है।

रामलीला मैदान में पहुँचने के बाद मैंने अपना मोबाइल ऑन किया। देखा कि बहू की और इनकी बहुत मिस्ड कॉल थीं। इतने में ही फिर दोबारा उसने फोन किया कि मम्मी आप कहाँ हो?

"मैं रामलीला मैदान में हूँ।"

"आपके पैरों का ऑपरेशन हुआ है और आप रामलीला मैदान में पहुँच गईं? फर्श पर आप बैठ नहीं सकतीं तो?"

"भगवान जी मुझ पर बहुत मेहरबान हैं। पता नहीं कहाँ से एक कुर्सी भेज दी है। उस पर बैठी हुई हूँ।"

"सच बताओ आप कहाँ हो?"

"मैं रामलीला मैदान में हूँ। यह सुन किरण बेदी की आवाज।" थोड़ी देर बाद उसको अन्य कई लोगों की आवाज सुना दी जिससे उसको विश्वास हो जाए कि मैं रामलीला मैदान में ही हूँ।

"मैं आपको लेने के लिए विकास को भेज रही हूँ।"

"वो आ भी गया तो भी बिल्कुल नहीं आऊँगी।"

बस जी, बहू ने मेरी बेटियों, दामाद, देवरों को फोन करके यह बात बता दी। मेरी बला से। हालाँकि बाद में मुझे घर पर आकर बहुत डाँट पड़ी कि अकेली क्यों गई थीं? मैंने कहा कि पूछती तो क्या मुझे कोई जाने देता?

"आपको मालूम है कि राजबाला को कितनी चोट आई थीं और बाद में वो मर गई थी?"

"तो अच्छा है ना। नाम तो अमर हो गया। कितनी अच्छी मौत मरी है वह। मुझे ऐसी ही मौत तो चाहिए जो समाज हित में करते हुए मिले।"

रामलीला मैदान जाकर मुझे इतना अच्छा लगा कि मैं बता नहीं सकती। इतनी अधिक भीड़ थी कि टी.वी पर तो केवल आगे-आगे की भीड़ दिखाई जा रही थी। जगह जगह टी. वी स्क्रीन लगे हुए थे और कैमरों का फोकस केवल आगे की भीड़ पर था। पीछे उससे दस गुणा ज्यादा लोग बैठे हुए थे।

हर पाँचवें मिनट में लोगों के जत्थों के जत्थे आ रहे थे और एक बार मंच के आगे आकर फिर पीछे जाकर बैठ रहे थे। जो लोग तीन दिनों से वहीं रूके हुए थे, उन्होंने वहीं रस्सी बाँधकर अपने कपड़े सुखाए हुए थे। महिलाओं ने अपने कपड़े अस्थाई स्नानघर/शौचालय के बाहर रस्सी बाँधकर सुखाए हुए थे। कहीं कोई पंखा नहीं था, उसके बावजूद लोगों का हुजूम जमा हुआ था। पिछली बार के आन्दोलन के समय बनाए गए सारे शौचालय टूटे पड़े थे। वे पल अभी तक मेरे दिल, मेरी आँखों में कैद हैं जिन्हें याद कर- करके मैं अत्यधिक रोमांचित व खुश हो रही हूँ।

शाम को चार बजे मैं रामलीला मैदान से इसलिए चल पड़ी कि ऑफिस टाइम हो जाने पर बस नहीं मिलती और रात को मुझे ठीक से नजर नहीं आता।अपनी दवाइयाँ भी ले जाना भूल गई थी, इसलिए वापस आना मजबूरी थी।

--00--

मेरी जिन्दगी का मूलमंत्र

मेरे दो परिचित परिवार हैं। दोनों से बहुत अच्छी मित्रता है। बहुत अपनापा है। उनमें से एक की बहन की लड़की और एक की बहन के लड़के के विवाह के बारे में जानकारी हासिल करने मेरे यहाँ आए। पति ने स्पष्ट कह दिया हम शर्मा जी से परिचित हैं। केवल उनके बारे में कह सकते हैं कि वह कैसे हैं। किंतु उनकी बहन के परिवार के बारे में या बहन के बच्चे किस स्वभाव के हैं, उसके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। दोनों परिवारों ने लड़के और लड़की को देखा। एजुकेशन के हिसाब से दोनों बच्चों ने एक दूसरे को पसंद भी कर लिया। फिर बात आई लेन-देन की। लड़के के मौसा (मौसी जिनसे मेरी अच्छी दोस्ती है) ने कहा "उनसे बोलो कि थोड़ा एस्टिमेट बढ़ा दें।"

"कितना चाहते हैं आप?"

"बस15 लाख तक कर दें"।

"15 लाआआआख! कहाँ से देंगे? एक विधवा... जिसने अपनी बच्चियों को ट्यूशन कर-करके पढ़ाया हो, वो 15 लाख कहाँ से देगी?"

"लेकिन लड़के के पिताजी नहीं मान रहे"।

"आप उनके साढ़ू भाई हैं। उन्हें क्यों नहीं समझाते?"

"बहुत समझाया, लेकिन वह मानने को तैयार नहीं है।"

"क्या आप लड़के का सौदा कर रहे हैं?"

"यह मेरा कहना नहीं है। वह लड़के के पिताजी नहीं मान रहे।"

"ठीक है। यदि ऐसी बात है तो पाँच लाख मैं अपनी तरफ से आपको अलग से दे दूँगा"। पति ने कहा

बाद में लड़की के मौसा मौसी से बात की गई। हमारे समाज में पढ़े लिखे परिवारों में भी एक गंदा रिवाज यह है कि जिन लड़कियों का भाई नहीं होता, उनकी शादी आसानी से नहीं होती।

लड़की मंगली थी। लड़का भी मंगली होना चाहिए। दोनों बातें मिल रही थीं। लड़की की सरकारी नौकरी है। एक विद्यालय में अध्यापिका है। घर और ससुराल दोनों ही जगह से स्कूल काफी नजदीक है। सारी बातें मैच कर रही थीं सिवाय लेन-देन के।

जैसे-तैसे बात बनी। शादी हो गई। लड़की को साथ ले जाकर शादी की सारी खरीदारी भी करते रहे।

थोड़े दिनों बाद फिर लड़के और लड़की के मौसा मौसी का मेरे घर एक नई समस्या को लेकर आए दिन आना-जाना शुरू हुआ।

"लड़की को किडनी की बीमारी है। और डॉक्टर ने कहा है कि वह दो साल से ज्यादा जीवित नहीं रह सकती, इसलिए हम लड़की को नहीं रख सकते।"

"ऐसा कैसे हो सकता है? जिसको किडनी की बीमारी हो तो यह तो नहीं है कि बहुत दिन बाद पता लगे। कैंसर का तो समझ सकते हैं कि बहुत देर में मालूम पड़ता है। पहले से कोई लक्षण नहीं होते। लेकिन किडनी की बीमारी के लक्षण पता लग जाते हैं। लड़की आपके साथ कितनी बार मार्केट गई है तो आपने कोई ऐसी बात महसूस नहीं की?"

"तब नहीं की, लेकिन अब हमने देखा है कि थोड़ा सा काम करते ही उसको थकान हो जाती है।"

"वह स्कूल जाती है ना"

"हाँ"

"घर में आकर काम करती है?"

"हाँ"

"फिर आप यह कैसे कह सकते हो कि किडनी की बीमारी है?"

"नहीं लड़का लड़की को रखने को तैयार नहीं है।"वे बोले

"यह तो कोई बात नहीं हुई। पहले आपकी बात मान ली गई। आपने कहा 15 लाख रुपए करवा दो। बार-बार आग्रह के बावजूद आप नहीं माने।"

मैंने अपनी सहेली से कहा कि भले ही तू मेरी पक्की सहेली है, लेकिन मैं कभी गलत बात से कंप्रोमाइज़ नहीं करूँगी।"

लड़के की मौसी-मौसा भी आते थे। वह बिल्कुल ही पड़ौस में रहते हैं। उनसे भी बातें होती थीं। यह रोजाना का कार्यक्रम बन गया था।

उनको समझाना!!

उनको समझाना !!

"तू मेरी बहन को देख। उसका रो-रोकर बुरा हाल है। उसकी हालत देखी नहीं जाती। "मेरी सखी बोली

"क्या लड़की जबान चलाती है?। सास को पलटकर सुनाती है? घर में काम नहीं करती?"

"नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

"तो फिर दिक्क़त कहाँ है?"

लड़की रोज स्कूल जाती थी। आकर घर में भी काम करती थी लेकिन पति-पत्नी में पति-पत्नी वाले संबंध नहीं थे। लड़का पत्नी को उसके मायके छोड़ आया। लड़की की मौसी ने यह बात बताई।

"लड़की से कहना कि दो दिन बाद ही ससुराल चली जाए। इस इन्तजार में न बैठी रहे कि पति ही लेने आएगा। बोल देना" मैंने कहा।

अब लड़के के मौसा मौसी आए। बोले कि "इसकी किडनी खराब है। हमने कई डाक्टरों को दिखाया है। सबने कहा है कि इसकी जिन्दगी सिर्फ दो साल की है। किडनी ट्रास्प्लांट करनी पड़ेगी और उसमें बहुत मोटा खर्च है।"

अब तो उनकी मंशा साफ समझ में आ चुकी थी कि इस बहाने और पैसा ऐंठना चाहते थे।

किसी प्रकार बहुत समझा-बुझाकर लड़की को ससुराल में रखने को राजी हुए और लड़की ससुराल में रहने लगी।

अब दूसरी कहानी शुरू हुई।लड़की की मौसी से मेरे संबंध खराब हो गए। मैंने तो पहले ही स्पष्ट कर दिया था मैं किसी भी गलत बात से समझौता नहीं करती और कभी किसी गलत व्यक्ति का साथ नहीं देती, भले ही उससे मेरे रिश्तों में फर्क पड़ जाए लेकिन किसी लड़की की जिंदगी बर्बाद हो जाए, उसके लिए कोई भी गलत बात न मैं करूँगी, न ही ये करेंगे। तब आपस में बोलचाल बंद हो गई थी।

अब दूसरी कहानी शुरू हुई। लड़की की मौसी को समस्या हो गई। एक बार मैंने पार्क में घूमते हुए उससे पूछा, "बिटिया खुश है ना? अब तो अपने घर चली गई है।

"फायदा क्या हुआ? रिश्ते तो खराब हो गए ना आपके अपनी सहेली से" वो बोलीं

"अरे मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है। हमें खुशी इस बात की है कि हमारी बच्ची ससुराल चली गई।"

"पर फायदा क्या हुआ?"

"हमारा मकसद क्या था? यही ना कि बच्ची ससुराल में रहे।"

उसके बाद से पडौसिन मुझसे बात करने में कतराने लगी। पार्क में घूमते हुए आमना-सामना होने पर आँख बचाकर आगे बढ़ जाती थी। मेरी सहेली ने भी बात करना और आना-जाना बंद कर दिया।

मुझे इस बात से कोई टैन्शन नहीं हुई। मुझे यह सन्तोष था कि बच्ची अपने ससुराल में खुश है।

अब सब कुछ सामान्य चल रहा है। किसी समारोह में आमना-सामना होने पर हँसकर हाल-चाल पूछ लेते हैं, पर पहले की तरह ज्यादा बात नहीं करते।

मेरी जिन्दगी का शुरू से एक ही मूलमंत्र रहा है

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा ना मिलिया कोय।
जब दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा ना कोय।

हम सबसे पहले अपने अंदर झाँकें कि हम किसी का बुरा तो नहीं सोच रहे? यह भी सोचें कि सभी अच्छे हैं और यह भी कि नफरत व्यक्ति से नहीं... उसकी आदतों से करो और उनसे कुछ सीखकर और स्वयं में बदलाव लाओ।

--00--

डायरी

चालीस लोगों की बस 16 तारीख को खाटूश्याम जी और सालासर बाला जी के दर्शनों के लिए गई थी। पहले दिन सालासर में किसी को अपना पर्स देकर भूल गई थी जिसमें दवाई व मोबाइल भी था। अगले दिन जब खाटूश्याम जी के दर्शनों के लिए जा रहे थे तो मैंने अपना पर्स अपने देवर को पकड़ा दिया था क्योंकि वह वापस धर्मशाला में जा रहा था। इनके अलावा सारी बस के लोग सुबह भी खाटू श्याम जी के मंदिर के दर्शन कर आए थे और प्रसाद भी चढ़ा आए थे लेकिन पतिदेव नहीं गये थे। जिस वक्त हम छड़ी यात्रा के लिए जा रहे थे तो रास्ते में मेरे देवर ने कहा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मुझसे बहुत देर तक चला नहीं जाएगा तो मैं मंदिर तक नहीं जा रहा हूँ। मैं वापस धर्मशाला में जा रहा हूँ। इतने में ही पतिदेव आए और बोले कि मेरे साथ चलो। पहले प्रसाद खरीदूँगा, फिर मंदिर चलना है।

"ठीक है।"

पहले दिन पर्स खोने का तमाशा हो चुका था, इसलिए मैंने अपना पर्स अपने देवर को थमाया क्योंकि जबरदस्त भीड़ थी। पर्स जरूर नीचे गिरता और यदि मैं नीचे झुक कर उसे उठाने की कोशिश करती तो भीड़ का रेला मेरे ऊपर से ही गुजरता हुआ निकल जाता और शायद मैं वहीं पर दम तोड़ देती या इतनी बुरी तरह से टूट फूट जाती कि जिंदगी भर बिस्तर में ही पड़ी रहकर अपनी सेवा करवाती।पतिदेव तो भागते-भागते आगे-आगे निकल गए। मैं भी किसी तरह से भीड़ को ठेलते हुए आगे जाने की कोशिश कर रही थी। जहाँ से

प्रसाद लेते हैं, उस दुकान पर जाकर देखा तो नहीं थे। मैंने सोचा इसका मतलब है कि मंदिर की लाइन में लग गए हैं। मैं भी मंदिर की लाइन में लगी और लोगों को यह कहकर कि हमारा पूरा ग्रुप बहुत आगे पहुँच चुका है, मुझे आगे जाने दो, वरना मैं सबसे अलग हो जाऊँगी तो मेरे लिए मुश्किल हो जाएगी। लोगों को ठेलते हुए अपने ग्रुप तक पहुँच गई। सारे रास्ते मुझे ये नजर नहीं आए। हमेशा ये एक जगह मन्दिर के अंदर एक छोटे से चबूतरे पर बैठ जाते हैं क्योंकि सीढ़ियाँ चढ़ने पर थक जाते हैं और बुरी तरह साँस फूलने लगती है। वहाँ बैठ कर बहुत देर इंतजार किया किन्तु ये नजर नहीं आए। फिर मंदिर के दर्शन करने आगे तक पहुँच गई।वहाँ भी नहीं थे। वहाँ एक तरफ खड़ी होकर काफी देर तक इंतजार करती रही। जब देखा कि नहीं आए तो उधर से नीचे उतरी।

मंदिर से जाने के दो रास्ते हैं। उस रास्ते से उतरकर फिर दूसरे रास्ते के लिए नंबर लगाया। उस रास्ते से ऊपर गई क्योंकि ये हनुमान जी के मंदिर के दर्शन अवश्य करते हैं। वहाँ भी इनका कोई अता पता नहीं था। वहाँ से वापस आकर सारे रास्ते दोनों तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देखती रही कि हो सकता है अपने ग्रुप के कुछ लोग खरीदारी करते हुए नजर आ जाएँ लेकिन कोई भी नहीं था। देखते-देखते आँखे भी बुरी तरह थक गईं क्योंकि मुझे दाएं-बाएं देखने से वैसे भी समस्या हो जाती है। जब देखा कि कहीं भी कोई नजर नहीं आ रहा तो एक बार तो सोचा कि सीधा मांगेराम की धर्मशाला में चली जाऊँ लेकिन मेरे पास पैसे भी नहीं थे। रिक्शा वाले को पैसे देने पड़ते हैं तो सोचा कि क्यों ना कोलकाता वालों की धर्मशाला में ही चली जाऊँ। हो सकता है कि बस के लोग वहाँ लाइन में लगे हुए हों। शुक्र है कि वहाँ चली गई। शीशे से झाँककर देखा तो हमारी बस के सभी लोग अंदर बैठे हुए थे। उसमें से एक लड़का मनीष भागा भागा एकदम आया और उसने दरवाजा खुलवाया। मैं अंदर गई। इनके पास कोई और बैठा हुआ था। वह इनके पास से हट गया। मजबूरी में मुझे वहाँ बैठना पड़ा। बैठी तो यह सोचकर थी कि ये शायद चिंतित होकर मुझसे पूछेंगे कि कहाँ रह गई थीं। इनको शायद चिंता होगी कि मुझे कहीं फिट तो नहीं पड़ गया या कहीं मैं रास्ता तो नहीं भूल गई, किंतु मैं यह देखकर दंग रह गई कि यह मुझे खा जाने वाली निगाहों से घूर रहे थे और बहुत देर तक घूरते रहे जैसे कि यदि मैंने देर लगा दी है तो इनकी नाक कट गई है और यह इनके मान अपमान का प्रश्न बन गया है इनकी पत्नी की वजह से इतनी देर लग गई। काश कि मेरे हाथ पर हाथ रख कर एक बार

यह पूछ लिया होता कि कहाँ रह गई थीं तो मुझे कितनी खुशी होती कि वो हमसे प्यार करते हैं।बिना रुके डाँटते रहे। मुझे तो बोलने का बिल्कुल भी मौका नहीं दिया।

जब अनवरत डाँटते रहे तो मैंने कहा कि मैं बताने की कोशिश कर रही हूँ लेकिन तुम मुझे बिल्कुल ही बोलने नहीं दे रहे।

"आपको कहा था कि मेरे साथ-साथ रहो। तुम मेरे साथ क्यों नहीं रहीं?" तब मुझे गुस्सा आया और मैंने कहा कि ठीक है अब आगे से यही करूँगी। यदि तुम्हारे पीछे कुछ लोग होंगे तो उनको धक्का मारूँगी। वो जाकर तुम्हारे ऊपर गिरेंगे। तुम भी गिरोगे। जिन लोगों ने मुझे देखा है कि मैंने धक्का दिया...जिसको धक्का दिया... उसको यह पता लगेगा कि मैंने उसे धक्का दिया... तब जो झगड़ा मचेगा... तब तुम्हें पता लगेगा कि इतनी भीड़ में यह कैसे संभव है। साथ-साथ ही चलना था तो मेरा हाथ क्यों नहीं पकड़ कर रखा था? आगे-आगे किसलिए भागे जा रहे थे?"

लेकिन ये मेरी किसी भी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। बस मुझे घूरे जा रहे थे और डाँटते जा रहे थे। अब मेरी बर्दाश्त की सीमा एकदम खत्म हो चुकी थी। मैंने चिल्ला कर कहा कि अब कुछ भी कहा तो अच्छा नहीं होगा। और मैंने सोच लिया था कि यदि बस कहीं ऐसी जगह रुके जहाँ एक तरफ कई बार खड्डे भी होते हैं तो मैं जानबूझकर खड्डे में गिर जाऊँगी। मोबाइल अपने साथ लेकर जाऊँगी और वहाँ से इनको फोन कर दूँगी कि मुझे ढूँढने की कोशिश करना बेकार है। मैं यहाँ पर पड़ी हुई हूँ। मुझे ढूँढ़ने की कोशिश करने का ढ़ोंग मत करना।मैं चुपचाप आँख बंद करके यही सब सोचती बैठी रही। 2 घंटे बाद बस एक होटल के पास रुकी। सभी लोग लघुशंका के लिए गए। चाय का आर्डर दिया जा चुका था। सभी चाय पीने के लिए बैठे। एक मेज पर पति बैठे हुए थे। इनके पास ही इनके मित्र बैठे हुए थे। जब मैं आई तो मित्र वहाँ से उठ गए और मेरे लिए स्थान बना दिया, किंतु मैं इनके पास बिल्कुल भी नहीं बैठना चाहती थी। मेरे मन में इनके प्रति इतना आक्रोश, इतनी नफरत थी कि मैं इनकी परछाईं से भी दूर बैठना चाहती थी। दूसरी मेज पर बैठी। मेरी देवरानी भी मेरे पास आकर बैठ गई और बोली कि इतना गुस्सा क्यों आ रहा है?"

"इनको मालूम है कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। जब मैं घर के पास के पार्क का रास्ता भूल सकती हूँ तो इन्होंने एक बार भी यह नहीं सोचा कि हो सकता है कि कहीं मैं रास्ता तो नहीं भूल गई। कहीं मुझे फिट तो नहीं

पड़ गया। उल्टा मुझे ऐसे घूर-घूर कर देख रहे हैं जैसे मैंने कितना बड़ा अपराध कर दिया हो। एक मिनट के लिए मेरे हाथ पर हाथ रख कर सहानुभूति पूर्वक यह नहीं पूछ सकते थे... कहाँ रह गई थीं? बहुत चिंता हो रही थी तो मेरे दिल को कितना सुकून मिलता।"

"यह बात तो बिल्कुल ठीक है। पता नहीं यह आदमी लोग औरतों की फीलिंग्स को क्यों नहीं समझ पाते। इन्हें हमेशा यही लगता है कि हम आदमी लोग ही ठीक हैं।"

खैर, चाय पीकर बस में बैठे तो बस में बैठने का एक रूल है कि पहले सबको अपनी-अपनी सीट पर ही बैठना होता है जिससे कि पता लग सके कि कौन रह गया और कौन आ गया तो मुझे मजबूरी में इनके पास ही बैठना पड़ा। चुपचाप आँखें बंद करके बैठ गई। इतने में ठंडे पानी की बोतलें दी गईं। मैं आँखें बंद करके बैठी थी इसलिये मुझे पता नहीं लगा। फिर झल्लाकर बोले कि क्या आप अपनी पानी की बोतल ले लेंगी?"

अभी तक तो मैं चुप थी।अब मेरा गुस्सा फूट पड़ा। मैंने कहा कि इस अपराध का केस किस धारा के तहत दर्ज होगा?"और आँख बंद करके आँसू गटकते हुए बैठी रही।

लोगों ने तम्बोला भी खेला लेकिन मैंने उसमें कोई हिस्सा नहीं लिया। मैं वहीं चुपचाप आँख बंद करके बैठी रही। आगे की सीट पर मेरा देवर बैठा हुआ था। उसने दो तीन बार मुझे आवाज़ लगाई- भाभी जी... भाभी जी... भाभी जी, लेकिन मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। आँख बंद करके चुपचाप बैठी रही। बाद में उसने पूछा कि तबीयत तो ठीक है ना। सिर्फ हाँ में गरदन हिलाकर मैं चुपचाप आँख बंद करके बैठी रही क्योंकि कुछ भी बोलने की बिल्कुल इच्छा नहीं हो रही थी। बाद में मुझे नहीं मालूम इन लोगों ने आपस में क्या प्लानिंग की कि बस में आवाज लगाई गई...

पुराने गाने गायेंगे। जिसको पुराने गाने आते हैं, वो आगे आए और पुराने गाने गाए। देवर के दोस्त की बेटी जहाँ बैठी हुई थी, माईक वहाँ तक पहुँच सकता था। उसी को बोला कि पुराना गाना गा। देवर को मालूम है कि मुझे पुराने गानों का बहुत ज्यादा शौक है। आज की पीढ़ी को तो पुराने गाने आते ही नहीं है। मेरी आदत है पुराने गाने को जरूर पूरा करती हूँ। उस लड़की ने पुराना गाना शुरू किया। थोड़ा सा गाकर बोली कि आगे नहीं आता। मैं आँख बंद करके बैठी रही। "आण्टी जी! आगे क्या है?" बस मैंने उसे आगे का

अंतरा बता दिया और फिर आँख बंद करके बैठी रही। उसने गाने की कोशिश की और फिर भूल गई।

"आप इधर आ जाओ ना आण्टी जी!"

उसके पास बैठी और उस गाने को पूरा करवाया। दो तीन गाने और गाये। फिर मैंने कहा कि आज थोड़ा सा मौका है। आप सभी लोग खाटू श्याम जी हर साल आते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हर महीने आते हैं, इसके बावजूद भी बहुत सारे लोगों को खाटू श्याम जी के बारे में आधी से अधिक बातें नहीं मालूम है। वह सब डिटेल में बताने का समय नहीं है, एक छोटी सी बात सिर्फ बताती हूँ। आप सबने पता नहीं देखा कि नहीं देखा कि श्याम बगीची में एक आला है जिसमें श्री कृष्ण और अर्जुन के पत्थर के खुदाई करके मूर्तियां बनी हुई हैं। भग्नावशेष बचे हैं। कहने को तो छोटा सा आला है। बमुश्किल छह इंच चौड़ा और एक फुट लम्बा है किंतु उसमें झांक कर देखो तो मूर्ति विशाल नजर आती है। बाईं तरफ से देखो तो एक अलग ही विशाल दृश्य नजर आता है। बिल्कुल सामने देखो तो अलग ही विशाल दृश्य नजर आता है। दाईं तरफ देखो एक अलग ही विशाल दृश्य नजर आता है। कितने लोगों ने देखा है?

फिर मेरे देवर ने कहा कि भाभी जी अपनी लिखी हुई कविता सुनाओ। मैंने सबसे यह पूछा कि देश में आज जो माहौल चल रहा है, उसमें एक कलमकार का कुछ फर्ज़ है कि नहीं? लोग कलमकार का मतलब नहीं समझे। मैंने बताया कि एक कलमकार का... एक साहित्यकार का... एक कवि का क्या फर्ज बनता है? क्या वह श्रृंगार रस की रचनाएं लिखे या देश के ज्वलंत मुद्दों पर लिखे? उसी बारे में एक कवि की कविता मैं आपको सुनाती हूँ। मैंने वह कविता सुनाई। बहुत तालियाँ बजीं। फिर मेरे देवर ने उठकर बताया कि यह कविता हमारी भाभी जी ने लिखी हुई है और ऐसी ही न जाने कितनी कविताएँ लिखी हुई हैं। फिर तो और भी तालियाँ बजीं और वंस मोर वंस मोर का शोर मचा। मैंने दो कविताएं और भी सुनाईं। सभी बोले कि कमाल कर दिया। आपने अपना यह हुनर कल क्यों नहीं दिखाया।

उसी समय अचानक किसी ने भगवान बुद्ध कहकर कोई बात शुरू की। भगवान बुद्ध सुनते ही मेरा पारा हाई हो गया। मैंने कहा जिसे आप भगवान कह रहे हैं, उसे भगवान किसने बनाया? वह तो भगवान बन गया लेकिन उसका क्या... जिसको वह सोता हुआ छोड़कर चला गया। क्या उसका यह फर्ज़ नहीं बनता था कि वह अपनी पत्नी को बता कर जाता? क्षत्राणियाँ

तो क्या... हर औरत अपने पति की तरक्की से खुश होती है। कभी उसमें बाधा नहीं बनती। यशोधरा भी खुशी-खुशी गौतम को विदा कर देती किंतु वह तो उसको सोते हुए छोड़कर चुपचाप रात के अंधेरे में निकल गए। क्या सोचा कि दुनिया ने उसको कितने कितने ताने दिए होंगे? तानों से बींध बींधकर कितने घाव दिए होंगे? मैं आपसे एक बात पूछ रही हूँ। यक्ष प्रश्न है। इस बात का जवाब दो। यदि यशोधरा इस तरह बिना किसी को बताये चली जाती तो आप लोग उसे क्या कहते...? देवी कहते? कुल्टा या कलंकिनी या व्यभिचारिणी? एक बात और.... सारे महापुरुषों ने हमेशा औरतों को ही समझाने की कोशिश की है। जानते हो क्यों? सबने पूछा-क्यों?

"इसलिए क्योंकि उनको मालूम है कि औरत ही समझदार होती है। उनको समझाया जा सकता है। पुरुष समझदार नहीं होता, क्योंकि मूरख को समझाय के ज्ञान गांठ को जाय। समझदार को भी समझाया जा सकता है। जो समझदार न होते हुए भी खुद को समझदार समझता हो, उसको नहीं समझाया जा सकता।"

--00--

नाम

नाम- राधा गोयल
शिक्षा- स्नातक, बी.एड.
सम्प्रति- २००८ में सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त
जन्मतिथि- 03/08/1948
वर्तमान पता- एफ ब्लॉक, विकासपुरी, नई-दिल्ली-११००१८
चलितभाष- 981159770
ईमेल- radhagoyal222@gmail.com

प्रकाशित पुस्तकें - एकल काव्य संग्रह -१. काव्य मंजरी, २. निनाद, ३. नई उम्मीद, नया आसमान ४. अजब अनोखे खेल, ५. जीवन एक खिलौना, ६.२०१६ में विश्व पुस्तक मेले में मंजिल ग्रुप साहित्य मंच द्वारा मेरी २५ कविताओं को निःशुल्क प्रकाशित किया गया। ७. हादसा (संस्मरण), ८. पाती प्रीत भरी (भाग-१), ९. पाती प्रीत भरी (भाग-२)

- कई सांझा संकलनों व पत्र पत्रिकाओं में भी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।
- सम्मान अनेक मिले, किन्तु कभी गिने नहीं।

समाज कल्याण के कामों के प्रति बहुत जुनून है और गम्भीर बीमारी होने के बावजूद मेरा जुनून मुझे ऊर्जावान बनाये रखता है।क्या बीमारी है? हादसा नाम की पुस्तक में संक्षिप्त विवरण है।फेसबुक पर हिन्दी प्रतिलिपि पर विस्तृत विवरण है।

हिन्द व हिन्दी का सम्मान, है प्रमाण देशभक्ति का.. आइए करें सृजन, शब्द से शक्ति का...

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला- बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331, मो.- 9424765259, ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स
Website:- www.antrashabdshakti.com
Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/
Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/

978-93-5372-250-0
मूल्य 250/-